अक्तूबर 2008 - मार्च 2009

वर्ष : 40-41 अंक : 4/1

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

भा. प. अ. केंद्र में विकसित प्रणाली

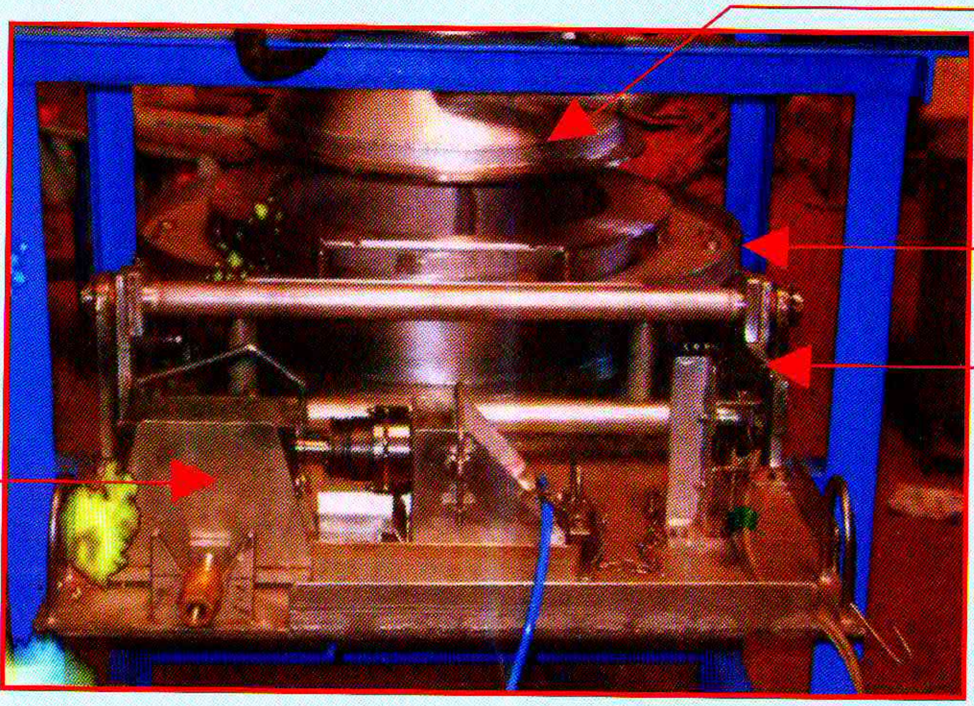

बंद उडेलक प्रणाली वाला सिरामिक गालक

: मूल्य :
20 रु.

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 2009

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा. प. अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित **हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता** हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है। **मूल्यांकन में नवीनतम जानकारी के साथ-साथ अच्छे रेखाचित्रों / फोटोग्राफों, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्त्व दिया जाता है।** अतः चित्रों को अलग से सफेद कागज / ट्रेसिंग पेपर कर काली रोशनाई (इंडिया इंक) से बनायें। फोटोग्राफ ब्लैक एंड व्हाइट हों तो उचित रहेगा। इन्हें लेख के अंत में संलग्न करें। नीचे दिये गये पते पर कृपया दो टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रतियां (लगभग 3000-4000 शब्द) भेजें।

अंतिम तिथि : 31 दिसंबर 2009)

पुरस्कार

प्रथम	-	2000/ रु.
द्वितीय	-	1500/- रु.
तृतीय	-	1000/- रु.
प्रोत्साहन	-	500/- रु.

पाँच प्रोत्साहन पुरस्कार एवं अहिंदी भाषी प्रतियोगियों को दो विशेष पुरस्कार 500/- रु. (प्रत्येक) के दिये जायेंगे। अतः अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं "वैज्ञानिक" की संपत्ति होगी। "वैज्ञानिक" पत्रिका से संबंधित पदाधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे। यदि रचना एक ही लेखक द्वारा लिखी गयी हो तो उचित होगा।

प्रविष्टियां भेजने का पता :

श्री कुलवन्त सिंह
प्रतियोगिता संयोजक एवं व्यवस्थापक "वैज्ञानिक",
वैज्ञानिक अधिकारी, पदार्थ संसाधन प्रभाग (MPD), मॉड लैब,
भा. प. अ. केंद्र (B.A.R.C.), मुंबई - 400 085. फोन : 022 2559 5378

वैज्ञानिक

वर्ष 40/41 अंक 4/1

अक्तूबर 2008 - मार्च 2009

: व्यवस्थापन मंडल :

श्री कुलवंत सिंह
(संयोजक)
डॉ. अशोक कुमार सूरी
श्री नंदलाल सोनी
श्री सत्यप्रभात प्रभाकर
श्री संजय गोस्वामी

: संपादन मंडल :

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
(संयोजक)
श्री जयप्रकाश त्रिपाठी
श्री कवींद्र पाठक
श्री शिवकुमार सिंह

वार्षिक शुल्क

आजीवन	संस्थागत	व्यक्तिगत
400 रु.	100 रु.	50रु.

कार्यालय

"वैज्ञानिक", हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल कांप्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई - 400 085.

अ नु क्र म णि का

संपादकीय 3

लेख

1. भूमिगत कोयले का गैसीकरण 5
   - डॉ. अवधेश शर्मा
2. पर्यावरण प्रदूषण के कुछ पहलू 8
   - विजन कुमार पाण्डेय
3. अमृता (गिलोय) - यथा नाम तथा गुण 12
   - सुभाष चन्द्र
4. आधुनिक खेती से प्रभावित होती मधुमक्खियां 19
   - डॉ. सविता गुप्ता
5. सेतु समुद्रम परियोजना प्राकृतिक और पर्यावरणीय खतरे 23
   - मधुर मोहन मिश्रा

टिप्पणियां

1. सुपर एलॉय के कुछ आवश्यक पहलू 26
   - संजय गोस्वामी
2. बढ़ता तापमान और दुष्प्रभाव 27
   - डॉ. ए. के. चतुर्वेदी
3. विकसित हो रहा है संज्ञानात्मक विज्ञान 29
   - डॉ. कृष्ण प्रकाश त्रिपाठी
4. पौधों में भी प्राणचेतना विद्यमान 30
   - विजन कुमार पाण्डेय
5. उपचारक होता है पालतू जानवरों का स्पर्श और साहचर्य 32
   - सीताराम गुप्ता
6. गार्डनिंग थैरेपी अर्थात् बागबानी द्वारा व्याधियों का उपचार 34
   - सीताराम गुप्ता
7. ग्राफीन एवं उससे कुछ संभावनाएं 36
   - डॉ. ए. के. चतुर्वेदी

विशेष स्मरण

1. सर जगदीशचन्द्र बोस के 150वें जन्म दिवस पर 38
   - संजय गोस्वामी

विविध

1. हिंदी का विज्ञान साहित्य कल, आज और कल 39
   - डॉ. देवकी नंदन

विज्ञान कथा

1. कल्पवृक्ष और ठंडी धरती 42
   - राजकुमार जैन

✪ ''वैज्ञानिक'' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

✪ ''वैज्ञानिक'' में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं।

✪ ''वैज्ञानिक'' एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा।

''वैज्ञानिक'' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिये उपयोग कर सकते हैं। परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार

विज्ञान कविता

1. **सितारों के संकेत** 18
   - मधुर मोहन मिश्र
2. **बादल का बांझपन** 56
   - डॉ. रश्मि वार्ष्णेय

विज्ञान समाचार

✷ **भा.प.अ. केंद्र से** 44
✷ **अन्य विज्ञान समाचार** 47

कुछ फूल : कुछ कांटे 51

विशेष : छपते-छपते

1. **आतंक का पर्याय बनता स्वाइन फ्लू (इंफ्लूएंजा-ए-एच1एन1)** 54
   - डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार

आवरण पृष्ठ पर दिये गये चित्र का विवरण

सिरामिक गालक के लिए एक बन्द उडेलक प्रणाली

अपशिष्ट प्रबंधन संयंत्र, कलपाक्कम के सिरामिक गालक के नीचे उपयोग करने के लिए एक बन्द उडेलक प्रणाली का विकास किया गया है, जो उडेलने के दौरान कोष्ठ (सेल) के अंदर संदूषण (कन्टैमिशन) रोकने में सहायक होगा। सिरामिक गालक का उपयोग रेडियोसक्रिय नाभिकीय उत्पादों को कोच मैट्रिक्स में समाहित करने के लिए किया जाता है। इसमें पिघलने के बाद अपशिष्ट उत्पाद को स्टेनलैस स्टील के बरतन में डाल दिया जाता है। उडेलने के दौरान कोष्ठ के अन्दर वायु वाहित सक्रियता बहुत बढ़ जाती है, जिसके कारण निकास फिल्टर बैंक में फिल्टर को जल्दी-जल्दी बदलना पड़ता है। यह प्रणाली इस समस्या को कम करने में काफि सहायक सिद्ध होगी। इस प्रणाली को एक मौजूद उत्पाद अवस्थान ट्रॉली के ऊपर लगाया जायेगा, जो कि दो उडेलन बिन्दुओं में से किसी के भी नीचे लाया जा सकता है। उडेलक बिन्दु के नीचे एक-एक छत्र (हुड) लगा दिया गया है। इसमें एक कक्ष है जिसके अन्दर के भाग में कई छिद्र हैं, जिनमें ऋणात्मक दाब बनाये रखने का प्रावधान है। बन्द उडेलक प्रणाली, जो कि टॉली के ऊपर लगी हुयी है, में दो भाग हैं। नीचे का भाग अचल है जबकि ऊपर का भाग चलनशील है। ऊपर के चलनशील भाग का फ्लेंज एक ड्राईव प्रणाली की सहायता से ऊपर उठकर छत्र (हुड) के साथ सील हो जाता है। ड्राईव प्रणाली में एक प्रत्यावर्ती मोटर (24 वोल्ट) चलित स्क्रू एवं कैंची की तरह की ऊपर नीचे करने वाली एक युक्ति एवं नियंत्रण प्रणाली होती है। ऊपर के फ्लेंज के नीचे एक फ्लोटिंग फ्लेंज होता है जो कि गालक के नीचे की संरचना को अति दाबित होने से रोकता है। दोनों अंतिम सिरों में, ऊपर के फ्लेंज की गति को रोकने के लिए सीमा स्विच लगाये गये हैं। इसके अलावा सुरक्षा के लिये बलाघूर्ण (टॉक) सीमा और यांत्रिक स्टॉपर भी लगाया गया है, जो कि एक निश्चित समय के बाद प्रणाली को बन्द कर देता है। इससे प्रणाली और भी अधिक सुरक्षित हो जाती है। किसी भी नियत (स्टीपुलेटेड) असुरक्षित कर्यांवन को रोकने के लिए आवश्यक सुरक्षा इंटरलॉक भी प्रदान किये गये हैं। ड्राईव प्रणाली को संरक्षण के लिए दूरस्थ तौर पर बाहर निकाला जा सकता है। ड्राईव प्रणाली के बन्द होने पर हस्तचलित कार्यांवन भी किया जाता है। छत्र (हुड) के अन्दर अति दाब होने से रोकने के लिए एक लेबिरींथ सील का प्रयोग किया जाता है। यह लेबिरींथ सील, चलनशील फ्लेंज के मार्गदर्शन का भी कार्य करती है। प्रणाली के नीचे का भाग सिरामिक ऊन से भरा हुआ होता है, जो नीचे के भाग को सीलिंग प्रदान करता है। प्रणाली स्टेनलैस स्टील से बनी है जो कि रेडियोसक्रियता एवं पर्यावरणीय संक्षारण से बचाने में सहायक है। इस बन्द उडेलक प्रणाली को प्लूटोनियम प्लांट संमिश्र, ट्राँबे में सफलतापूर्वक चलाकर प्रदर्शित किया जा चुका है।

- आर. के. सोनी, एन. आर जी. (पी.पी.)
भा.प.अ. केंद्र, मुंबई - 400 085.

संपादकीय

कार्बन का एक नया स्वरूप - ग्राफीन : भविष्य की एक नयी आशा

'सूक्ष्म सुंदर है' लेकिन सूक्ष्मतम सुंदरता के साथ-साथ अत्यन्त उपयोगी हो सकता है, यह स्पष्ट हुआ जब नैनो पदार्थ एवं नैनो प्रोद्योगिकी अपने अभूतपूर्व गुणों के कारण अनेकानेक अनुप्रयोगों के लिए उपयुक्त हैं। यह बात बहुत पुरानी नहीं है। 1996 में जब रिचर्ड ई. स्मैली, रॉबर्ट एफ कर्ल तथा सर हेरॉल्ड डब्ल्यू क्रोटो को उनकी फुल्लरीन की खोज को नोबेल पुरस्कार दिया गया तो नैनो विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को एक नया बल मिला और इसे नैनो-काल की शुरूआत भी कहा जाने लगा। कालांतर में 'नैनो' शब्द विज्ञान के लिए सर्वत्र एक महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक अंग बन गया। माईक्रो से नैनो संक्रमण के दौरान निसंदेह विज्ञान को एक नयी दिशा एवं गति मिली तथा इसने कई वैज्ञानिक गुत्थियों को सुलझाने एवं नयी खोज देने में अहम् भूमिका निभाई है। वैज्ञानिकों की पहुँच परमाण्विक स्तर की परिघटनाओं की ओर बढ़ता गया। इस विषय पर 'वैज्ञानिक' के अक्तूबर-दिसंबर 2005 अंक के कुछ प्रकाश डाला गया है।

नैनो-काल में जो पदार्थ सबसे अहम् भूमिका निभा रहा है वह है कार्बन। हालांकि कार्बन अपरूपों में हीरा, ग्रेफाइट की जानकारी प्राचीन काल से है तथा फुल्लरीन (1985), कार्बन नैनो ट्यूब (1991) की खोज को नजदीकी भूत की ही श्रेणी में रखा जा सकता है। परंतु अभी कुछ वर्षों पूर्व एक और स्वरूप जिसकी मोटाई एक परमाणु के बराबर है तथा जो हीरे से भी अधिक प्रबल तथा विद्युत धारा की गति में सिलिकॉन के मुकाबले 100 गुना है, हमारे सामने आ चुका है। कहा जाता है कि आज की तारीख में यह ब्रह्माण्ड में सबसे पतला पदार्थ है। यह कार्बन परमाणुओं की हनीकाँब आव्यूह में पूर्णतः भरी हुई एक द्विविमीय समतल एकल सतह है और इसे ग्रेफाइट निर्माण की इकाई कहा जाता है।

हालांकि 70 वर्ष पूर्व लैंडाऊ एवं पीयर्लस ने सैद्धांतिक तौर पर यह बताया था कि एक द्विविमीय एकल क्रिस्टल ऊष्मागतिकी तौर पर अस्थिर पदार्थ होते हैं, और इनके अस्तित्व पर संदेह भी व्यक्त किया था। फिर भी कई वैज्ञानिक अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण ऐसी संरचनाओं पर निरंतर कार्य करते रहे। इन शोधों को एक प्रमोचनात्मक बल 2004 में मिला जब स्वतंत्र रूप से स्थिर ग्राफीन के अस्तित्व को प्रायोगिक तौर पर सिद्ध किया गया। साथ ही इस बात की भी पुष्टि की गयी कि इसमें निहित आवेश वाहक वस्तुतः मात्रा विहीन डिराक–फरमिऑन हैं। नैनो-ग्राफीन प्लेटलेट्स का अनुमानित घनत्व 1.8-2.2 ग्रा/घन सेमी. है। हालांकि 1980 के दशक में नैनोग्राफीन प्लेटलेट्स बनाने के प्रयास हुए थे परंतु उस समय उसकी महत्ता को ठीक से नहीं समझा गया था।

जैसे पहले कहा जा चुका है यह एकल परमाण्विक प्लेन (समतल) एक द्विविमीय क्रिस्टल (मणिभ) है, जबकि साधारणतः लगभग 100 परतें मिलकर एक त्रिविमीय तनु फिल्म के बराबर होती है। परंतु हाल में यह सिद्ध किया गया है कि ग्रेफाइट के मामले में केवल 10 परतों से ही वांछित इलेक्ट्रॉनिक संरचना मिल सकती है और ग्राफीन केवल दो परतों से ही एक सरल इलेक्ट्रॉनिक संरचना बनाने में समर्थ है। हालांकि दोनों परतें अपने आप में शून्य गैप अर्द्धचालक परतें होती हैं। द्विपरत ग्राफीन द्वारा 0.25 इलेक्ट्रॉन वोल्ट का बैंडगैप बनता है जो कई प्रकाशीय अनुप्रयोगों की ओर इंगित करता है। ग्राफीन को बनाने के लिए ऐपीटैक्सी विधि से सफलता मिलने की अधिक संभावना है। हाइड्रॉ कार्बन के रासायनिक वाष्प निक्षेपण द्वारा एक तथा कुछ परतों की ग्राफीन को ऐपीटैक्सी पद्धति से धातु सतह पर संवृद्ध किया जा सका है। सिलकॉन कार्बाइड (SiC) के ऊष्मीय विघटन से भी ग्राफीन प्राप्त किया गया है। सन् 2002 में जांग एवं उसके साथियों को एकल तथा बहु परत ग्राफीन संरचना को आंशिक रूप से ग्रेफाइट युक्त पॉलीमरिक कार्बन से अलग करने में कुछ सफलता मिली थी। सन्

2004 में नोवोसेलोव तथा उसके सहयोगियों स्कॉच टेप विधि से एक ग्रेफाइट प्रतिरूप से ग्राफीन की एकल परत बनाने में सफल हुए। हालांकि यह तरीका इन फिल्मों के लिए उचित नहीं कहा जा सकता तथापि इसके बाद नैनो ग्राफीन पदार्थ इलेक्ट्रॉनिक युक्तियों के लिए एक नये आकर्षक पदार्थ के रूप में उभरने लगा।

ग्राफीन के वास्तविक एवं व्यवहारिक (प्रेक्टिकल) अनुप्रयोगों के लिए आवश्यक है कि इसकी शीट (चादर) समुचित मात्रा में तैयार की जा सके। इस कारण नैनो-ग्राफीन प्लेटलेट्स और नैनो-प्लेटलेट्स नैनो कंपोजाइट (संश्लिष्ट) तैयार करने की दिशा में कार्य आगे बढ़े। नैनो संश्लिष्ट को तनु फिल्म या पेपरनुमा पदार्थ के रूप में बना सकते हैं। क्षेत्र-प्रभाव ट्रांजिस्टर (FET) के बहुत संभावित तथा आशाजनक अनुप्रयोग लगते हैं। इस दिशा में अमरीका की बहुमान्य कंपनी आई बी एम (IBM) तथा एम आई टी (MIT) नित नयी संभावनाओं को प्रदर्शित कर रहे हैं। 2008 में आई बी एम 26 गीगाहर्त्स का ट्रांजिस्टर प्रदर्शित किया तो बाद में एम आई टी के वैज्ञानिकों ने ऐसी ग्राफीन चिप की संभावना बताई जो 1000 गीगा हर्त्ज प्रोसेसर बना सकता है।

बताया जाता है कि कार्बन नैनो-ट्यूब के वास्तविक अनुप्रयोग में इसकी भंगुरता के कारण जो दिक्कतें थीं उन्हें पॉलीमर के साथ तैयार ग्राफीन संश्लिष्ट शीट द्वारा काफी हद तक पूरा किया जा सकता है। इन ग्राफीन संश्लिष्ट पेपरनुमा शीट को विद्युत-चुंबकीय व्यतिकरण परिक्षण (ई.एम.आई.) की समस्या से छुटकारा पाने में प्रयुक्त किया जा सकता है। कॉपर से 4 गुना अधिक ऊष्मीय चालकता के कारण माइक्रो-इलेक्ट्रॉनिक युक्तियों में ऊष्मा निष्कासन परत के रूप में अधिक दक्ष पदार्थ, उच्च विद्युत चालकता के कारण ईंधन सेल, बाईपोलर (द्विध्रुवीय) प्लेट, उच्च यांत्रिक प्रबलता के कारण गोल्फ बॉल, हाइड्रोजन संचयन हेतु माइक्रो-कंपोजाइट पात्र (डिब्बा), इत्यादि संभावित अनुप्रयोग हैं। इनके अलावा चालक पेपर (लेपन) के रूप में हवाई जहाजों, दूरसंचार टावरों, वायु-टरबाइन ब्लेड में संरचनात्मक आसंजक बतौर तड़ित चालक हेतु उपयोग में ला सकते हैं। लीथियम-आयन बैटरी में अत्योच्च धारिता वाला कैथोड, सौर सेलों में प्रचलित धातु-ऑक्साइड विंडो के स्थान पर, सौर परावर्तक, वायु परिरक्षक, स्वतः स्वच्छ होने वाली खिड़कियों, गैस-संसूचकों में कुछ और उपयोग हो सकते हैं।

विज्ञान में चल रही प्रगति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि ग्राफीन एक संकल्पनात्मक नया पदार्थ है जिससे भविष्य में कई आशाएं बनती हैं परंतु यह भविष्य 15-20 वर्षों से पहले संदेहात्मक लगता है क्योंकि इससे संबंधित कई प्रौद्योगिकीय एवं पदार्थ संबंधित समस्याएं और विकास भी तो साथ-साथ होने हैं।

❑❑❑

प्रस्तुत अंक 'वैज्ञानिक' का अक्तूबर 2008 - मार्च 2009 एक संयुक्तांक हैं। इसमें पूर्ववत् लेख - टिप्पणी - विज्ञान समाचारों के साथ विज्ञान कविता - कथा - विवेचन इत्यादि भी शामिल किये गये हैं। अंकों के प्रकाशन में चल रहे विलंब से हम अभी भी उभर नहीं पाए हैं उसके लिए खेद है। परंतु हम प्रयत्नशील हैं। लेखकों एवं पाठकों से निवेदन है कि वे अपना सहयोग सदैव की भांति बनाए रखें। डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता की अंतिम तिथि 31 दिसंबर 2009 है, कृपया समय पर अपने लेख भेजें। मोनोग्राफ (अधिक जानकारी अंतिम पृष्ठ पर) हेतु भी रूपरेखाएं आमंत्रित हैं।

– डॉ गोविंद प्रसाद कोठियाल

भूमिगत कोयले का गैसीकरण : ऊर्जा दोहन का एक और विकल्प

- डॉ. अवधेश शर्मा
केंद्रीय खनन् एवं ईंधन अनुसंधान संस्थान, बिलासपुर इकाई, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

कोयले से उपयोगी गैस प्राप्त करने का विचार लगभग 1500 वर्षों से मनुष्य के मस्तिष्क में रहा है। गैसीकरण की तकनीकी सर्वप्रथम सन् 1800 में अमरीका में बड़े पैमाने पर उपयोग में लायी गयी। तब शहरों में 'टाऊन गैस' के नाम से रात को सड़कों पर रोशनी की जाती थी जो कि इस तकनीक का अविकसित रूप था। लेकिन जब प्राकृतिक गैस के बड़े भंडारों का पता चला तथा तकनीकी विकास के साथ पाइपों के द्वारा वितरण प्रारंभ हुआ तो टाऊन गैस पूर्णतः बिलुप्त हो गयी। लगभग सौ वर्षों के अंतराल के बाद, ऊर्जा की बढ़ती मांग एवं विभिन्न उद्योगों के लिए आवश्यक गैस की आपूर्ति के लिए गैसीकरण की प्रक्रिया पुनः प्रारंभ हुई। इस विधि में कोयला का खनन् कर खान के बाहर गैसीकरण संयंत्रों द्वारा गैस प्राप्त करने की प्रक्रिया चलती रही। इस प्रक्रिया में प्रदूषण एक प्रमुख समस्या बनकर उभरने लगी जिसमें वायु, जल एवं मिट्टी की क्षति शामिल थी।

ऊर्जा की निरंतर बढ़ती मांग के साथ ही कोयला गवेषण के क्षेत्र में तेजी आयी जिससे यह सच्चाई उभरकर सामने आयी कि पूरे विश्व में उपलब्ध कोयला भंडारों का मात्र 1/6 वां भाग ही खनन् के लिए आर्थिक रूप से लाभकारी है। इसके अतिरिक्त, सभी भंडार या तो सतह से काफी नीचे हैं या कोयले के संस्तर काफी पतले तथा भौमिकीय गतिविधियों के कारण बिक्षुब्ध हो गये हैं। इन भंडारों को सामान्य खनन् विधियों द्वारा निकाला नहीं जा सकता है।

इन कठिनाइयों एवं समस्याओं को देखते हुए यह विचार आया कि गैसीकरण की प्रक्रिया क्यों न जमीन के नीचे की जाए? तकनीकी विकास के साथ सन् 1960 के दशक से इस क्षेत्र में तीव्रता आयी। आज परीक्षण एवं उत्पादन के रूप में अनेक देशों, यथा चीन, भारत, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, अमरीका, इंग्लैंड आदि में इस तकनीक का उपयोग हो रहा है। चीन में सन् 1980 से इस क्षेत्र में विकास कार्य प्रारंभ हुआ और आज वह भूमिगत कोयला गैसीकरण में सबसे बड़ा और अग्रणी राष्ट्र है।

भूमिगत गैसीकरण प्रक्रिया

भूमिगत कोयला गैसीकरण का मूल सिद्धांत चित्र में स्पष्ट किया गया है। कोयला संस्तर में दो संधिप्त वेधन किया जाता है - एक अंतःक्षेपण के लिए तथा दूसरा उत्पादित गैसों की प्राप्ति के लिए। अंतःक्षेपण संछिद्र के द्वारा हवा, ऑक्सीजन या वाष्प, कोयला संस्तरों में विस्फोट के लिए भेजा जाता है। दोनों संछिद्रों को कोयला संस्तर के आवश्यक स्थान तक ले जाया जाता है। जब विस्फोट के बाद कोयला संस्तर में दहन प्रारंभ होता है तब उत्सर्जित गैसें उत्पादन संधिप्त की ओर बढ़ती हैं, फलतः रासायनिक क्रियाओं के तीन क्षेत्रों यथा ऑक्सीकरण, अपचयन तथा ताप अपघटन/शुष्कन का निर्माण होता है। ऑक्सीकरण क्षेत्र में, अंतःक्षेपण संछिद्र द्वारा भेजी गयी हवा में विद्यमान ऑक्सीजन कोयला के संपर्क में आकर कार्बन-डाई-ऑक्साइड बनाकर समाप्त हो जाता है। मुक्त ऑक्सीजन के अभाव में गैस धारा उत्पादन संछिद्र की ओर बढ़ते हुए अपचायन क्षेत्र में प्रवेश करती है जहां 600 से 900 डिग्री सेल्सियस तापमान होने के कारण संपूर्ण CO_2, CO में अपघटित हो जाती है। यहाँ जल वाष्प चार (Char) से क्रिया कर हाइड्रोजन गैस का निर्माण करता है।

कार्बन - CO_2 तथा कार्बन - वाष्प क्रियाओं के ऊष्माशोषी होने के कारण तापमान गिर जाता है - फलतः गैस धारा ताप अपघटन/शुष्कन क्षेत्र में प्रवेश कर कोयला के वाष्पीय पदार्थों में घुल-मिलकर तार बनाती है या ऊष्मीय टूटन के कारण CO, H_2 या हलके हाइड्रोकार्बन के रूप में गैस धारा में सम्मिलित हो जाती है। यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक कि पूरा कोयला संस्तर समाप्त नहीं हो जाता। उत्पादन संछिद्र से प्राप्त होने वाली गैसों में 35-40 प्रतिशत हाइड्रोजन, 20-30 प्रतिशत CO, 30-35 प्रतिशत CO_2, 5-10 प्रतिशत मीथेन (CH_4) तथा अन्य गैसें होती हैं।

उत्पादन संछिद्र से प्राप्त गैसों को सतह पर लाकर अलग-अलग करके संश्लेषण गैस, ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। ठंडा होने के बाद गैसों को छानकर राख

तथा तार कणों को आसानी से अलग किया जा सकता है। इसके लिए हाइड्रोजन सल्फाइड तथा राख उत्पाद जैसे आर्सेनिक, मर्क्यूरी, लेड को अलग करने की तकनीक मौजूद है। इन यौगिकों को सुरक्षात्मक दृष्टि से प्रवण भी किया जा सकता है। H_2 को या तो अकेले इस्तेमाल करने के लिए अलग किया जा सकता है या संश्लेषण गैस में एक घटक के रूप में भी ($H_2 + CO$) उपयोग में लाया जा सकता है।

कोयला के लक्षणों का प्रभाव

अभिलक्षण गैसीकरण में कोयले की पारगम्यता तथा फूलनन का विशेष प्रभाव पड़ता है। कोयला संस्तरों की प्राकृतिक पारगम्यता उसमें स्थित नमी, उसकी कोटि तथा अधिभार दाब की प्रकृति के अनुरूप बदलता रहता है। नमी बढ़ने से पारगम्यता में कमी होती है। यह कमी अधिभार दाब बढ़ने से भी होती है। जब कोयला को गर्म किया जाता है तो वह फूलता है, यह गुण उसके प्लास्टिक अभिलक्षण के कारण है जो एक भौतिक-रासायनिक गुण है। फूलनन के कारण दोनों संछिद्रों के मध्य संपर्क रास्ते में रुकावट पैदा हो जाती है जिससे ऑक्सीकरण दर मंद होकर गैसों के उत्पादन में बाधा उत्पन्न कर देती है। इसीलिए भूमिगत गैसीकरण पद्धति में अंतःक्षेपण और उत्पादन संछिद्रों के बीच संयोजन अति-आवश्यक है। संचालन दाब में आवश्यक फेरबदल कर अंतःक्षेपण विस्फोट तथा उत्पादित गैस में होने वाले क्षति को बचाया जा सकता है।

उपयोग का सकारात्मक पहलू

भूमिगत कोयला गैसीकरण व्यापारिक पैमाने पर कम ऊष्मा मान की गैस तथा अन्य उत्पाद जैसे अमोनिया, अल्कोहल आदि ही नहीं उपलब्ध करायेगा अपितु स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा पर्यावरण समस्याओं को भी कम करेगा जो कि परंपरागत खनन् विधियों एवं ऊर्जा प्राप्त करने के साधनों में कठिन है। भविष्य में कोयला से ऊर्जा उत्पादन के लिए यह पद्धति निम्न कारणों से महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

1. अधिक मोटाई वाले कोयला संस्तरों का अधिकांश ऊष्मा मान का उपयोग।
2. कोयला खनन् की आवश्यकता नहीं।
3. सतह से काफी नीचे स्थित संस्तरों में मीथेन की अधिकता के कारण खनन् खतरनाक सिद्ध होती है, अतः वहां यह विधि अत्यंत उपयोगी एवं व्यावहारिक है।
4. पतले, उथले तथा खराब छतों के कारण जिन संस्तरों का खनन् संभव नहीं, उससे ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है।
5. पूंजी तथा परिचालन व्यय अन्य तरीकों से बहुत ही कम।
6. पर्यावरण हितैषी
7. बड़े पैमाने पर भूमिगत कोयला भंडारों का दोहन
8. राख तथा धातुमल को हटाने की आवश्यकता नहीं, वे वहीं बने गुहिका में एकत्रित होते रहेंगे।

भारत में संभावनाएं एवं प्रगति

अपने देश में कोयला भंडारों का बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा है जिन्हें प्रचलित खनन विधियों द्वारा आर्थिक एवं राष्ट्रीय लाभ के रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। संशोधित आधुनिक भूमिगत गैसीकरण तकनीक के द्वारा इन गहरे, कम मोटाई तथा निम्न कोटि के कोयला संस्तरों में स्थित ऊर्जा का दोहन संभव है। इस विधि का सुखद पहलू यह है कि इससे स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं पर्यावरण प्रदूषण की समस्या पैदा नहीं होगी। हालांकि इससे प्राप्त गैस निम्न गुणवत्ता की होगी फिर भी इसे ईंधन (हाइड्रोजन ईंधन) के रूप में उपयोग में लाया जा सकेगा, साथ ही सल्फर ऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड तथा मर्क्यूरी के उत्सर्जन को आश्चर्यजनक रूप से कम किया जा सकेगा। सबसे बड़ी बात यह है कि इस विधि में कोयला के चूर्णन की आवश्यकता ही नहीं होगी। भारत में इस क्षेत्र में शोध जारी है। राष्ट्रीय ऊर्जा नीति का यह एक मुख्य भाग है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय विकास योजना में इसे सम्मिलित किया गया है ताकि भविष्य में तेल तथा गैस पर हमारी निर्भरता कम होती जाये। इस योजना के तहत तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग, दो प्रायोगिक संयंत्र तमिलनाडु तथा आंध्र-प्रदेश में स्थापित करने जा रहा है जहां लिग्नाइट तथा कोयले से गैस प्राप्त किया जाना प्रस्तावित है। इसी तरह आयोग ने गुजरात खनिज विकास निगम, कोल इंडिया लिमिटेड, गुजरात औद्योगिक विद्युत निगम तथा सिंगरेनी कम्पनी से भी समझौता किया है। इन प्रायोगिक परियोजनाओं को रूस के कोंि‌स्की संस्थान (सिम) के अनुशंसाओं के अनुरूप स्थापित करने का प्रस्ताव है। इसके द्वारा मेहसाना-अहमदाबाद के कोयला/लिग्नाइट भंडारों से 15,000 अरब घन मीटर गैस प्राप्त किया जा सकेगा जो आयोग के कुल स्वतंत्र गैस भंडार से सत्तर गुना अधिक है।

सिंगरेनी कॉलरी कम्पनी ने ऑस्ट्रेलिया के कार्बन इनर्जी प्रा. लि. के साथ समझौता कर तमिलनाडु एवं आंध्र प्रदेश के लिग्नाइट एवं कोयला भंडारों से गैस प्राप्त करने की संभावनाओं पर कार्य प्रारंभ कर दिया है। इसी तरह गैस ऐथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड ने राजस्थान में स्थित लिग्नाइट भंडारों से गैस निकालने की परियोजना तैयार की है। जिससे 70-80 मेगावाट बिजली पैदा की जायेगी। इसके

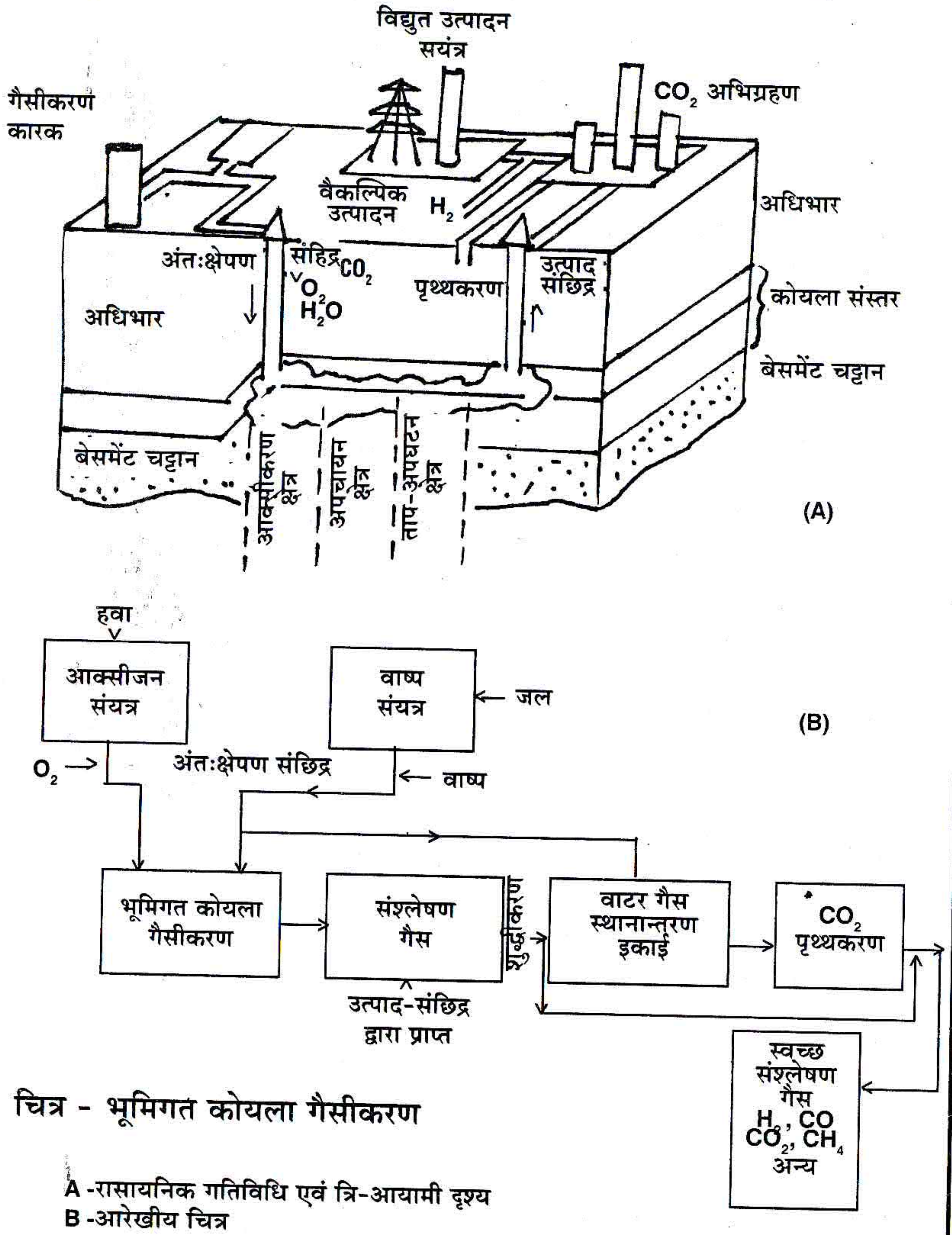

चित्र - भूमिगत कोयला गैसीकरण

A -रासायनिक गतिविधि एवं त्रि-आयामी दृश्य
B -आरेखीय चित्र

लिए गेल (GAIL) ने कनाडा के सहयोग से इरगो एक्सर्जी टेक्नोलॉजी प्राप्त किया है। इस सहयोग के तहत सन् 2009 तक पांच मेगावाट का प्रायोगिक संयंत्र स्थापित करने का प्रस्ताव है, तत्पश्चात पहला और दूसरा व्यापारिक संयंत्र (177 मेगावाट प्रत्येक) क्रमशः सन् 2011 तथा 2013 में स्थापित किया जायेगा। तीसरा संयंत्र जिसकी क्षमता 400 मेगावाट होगी, सन् 2015 तक पूरा करने का प्रस्ताव है।

❖❖❖

पर्यावरण प्रदूषण के कुछ पहलू

- विजन कुमार पाण्डेय

बड़ी बाग लंका मैदान, बाजर के पास, मकान नं. 6/ए, गाजीपुर - 233 001 (उ. प्र.)

ऊर्जा के प्राथमिक स्रोतों एवं इस्पात उद्योग में कोयले का जहां तक प्रमुख स्थान है। वहीं इसके जलने पर विभिन्न हानिकारक गैसें जैसे CO_2, NO_2, CO, CH_4 आदि उत्पन्न होती हैं। कार्बन मोनोऑक्साइड इस्पात उद्योग की सबसे खतरनाक गैस है। यह शरीर के हेमोग्लोबिन से तीव्रता से संयोग कर शरीर में ऑक्सीजन की कमी कर देती है। इससे व्यक्ति बेहोश हो जाता है और मृत्यु भी हो जाती है। CO_2 के रिसाव का पता इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों द्वारा लगाया जा सकता है। साथ ही लेखक ने प्रस्तुत लेख में रेडियो धर्मी विकिरण और प्रदूषण के दुष्प्रभावों तथा उनसे बचाव के उपायों के बारे में भी चर्चा की है।

मुख्यतया ऊर्जा-स्रोत के रूप में तेल, गैस और कोयला प्रयुक्त किये जाते हैं। आज विश्व में ऊर्जा-स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा का लगभग तिहाई भाग संयुक्त राज्य अमेरिका में इस्तेमाल होता है। प्राकृतिक गैस और कच्चे तेल की खपत भी वहीं सबसे अधिक है।

भारत में विद्युत उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत कोयला है। लगभग 60% विद्युत उत्पादन तापीय विद्युत शक्तिगृहों द्वारा होता है और ये गृह निर्भर करते हैं कोयले पर। इनके अतिरिक्त अन्य औद्योगिक प्रतिष्ठान जैसे इस्पात, सीमेंट, उर्वरक, रासायनिक, कागज और सहस्त्रों लघु एवं मध्यम श्रेणी के उद्योग भी ऊर्जा की अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कोयले पर ही निर्भर हैं।

यातायात के क्षेत्र में यद्यपि रेलवे द्वारा कोयले की प्रत्यक्ष खपत कम हो रही है क्योंकि वाष्प-इंजन हटाये जा रहे हैं यथापि कुछ क्षेत्रों में ऊर्जा की आवश्यकताओं के लिए रेलवे अब भी कोयले पर निर्भर हैं। कुछ अविद्युतित मार्गों पर अभी भी वाष्प-इंजन चलाये जा रहे हैं। फिर विद्युतकर्षण के लिए ऊर्जा की पूर्ति विद्युतशक्ति में परिवर्तित कोयले से ही हो सकती है।

कोयले के महत्त्व को देखते हुए कोयला - उत्पादन बढ़ाने के कार्यक्रम प्रारंभ किये गये। बीसवीं शताब्दी में सन् 1970 से कुछ वर्ष पूर्व कोयला-उत्पादन, कोयला खान के राष्ट्रीयकरण के समय 7 करोड़ टन था जो सन् 1991-92 में बढ़कर 22.928 करोड़ टन हो गया। 1991 की अपेक्षा सन् 1992 में उत्पादन में 8.3% वृद्धि हुई। यह वृद्धि 92-93 में कायम रही। आज कोयला उत्पादन में भारत का स्थान विश्व में चौथा है। कोयले की निरन्तर बढ़ती माँग को पूरा करने और कोयले की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए उन्नत तकनीक का प्रयोग आवश्यक है। इस हेतु सरकार ने पोलैंड, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, कनाड़ा, ऑस्ट्रेलिया आदि के साथ सरकारी स्तर पर संयुक्त कार्य दल का गठन किया है।

कोयले के मुख्य रासायनिक घटक :-

1. 2.90 % नमी या आर्द्रता
2. 22.17 % राख
3. 31.86 % वाष्पशील पदार्थ, जिनमें है :-
   (अ) 0.48 % सल्फर या गंधक
   (ब) 5.61 % हाइड्रोजन
   (क) 5.23 % नाइट्रोजन
   (ड) 20.3 % ऑक्सीजन
4. 42.17 % कार्बन

भारतीय कोयले में 0.3 – 1.67 प्रतिशत सल्फर होता है। हजार टन कोयला इस्तेमाल करने वाला प्रत्येक विद्युत शक्तिगृह के प्रतिदिन दहन कोयले का धुआँ आस-पड़ोस के वातावरण को प्रदूषित करता है, क्योंकि तापीय विद्युत शक्तिगृह में हानिकर अशुद्धियों वाले कोयले के

दग्ध होने पर भिन्न-भिन्न लव पदार्थ, CO_2, NO_2, CO, CH_4 तथा C_2H_2 जैसे गैसें और दहन उत्पाद के ठोस घटक वातावरण में विसर्जित होते रहते हैं। ये वायु में विद्यमान ऑक्सीजन की मात्रा को कम कर देते हैं। धुएँ के अतिरिक्त धूल और राख भी वातावरण में विसर्जित होते हैं जो काफी बड़े भू-क्षेत्र को प्रभावित करते हैं। राख उड़कर मोटी परत के रूप में वृक्षों की पत्तियों पर जम जाती है जिसके कारण पत्तियाँ प्रकाश-संश्लेषण नहीं कर पाती, अर्थात सूर्य की रोशनी में ये हरी पत्तियाँ हवा के कार्बन डाइऑक्साइड को कार्बन और ऑक्सीजन में नहीं तोड़ पाती। ऐसा न कर सकने के कारण वृक्षों और पौधों की वृद्धि समाप्त हो जाती है। फिर तापीय विद्युत शक्तिगृहों द्वारा अपशिष्ट पदार्थ पास की नदी या जलाशय में विसर्जित कर दिये जाते हैं। जिससे पानी प्रदूषित और विषाक्त हो जाता है।

केवल दिल्ली में 'डेसू' (DESU) अर्थात् दिल्ली विद्युत आपूर्ति निगम द्वारा संचालित विद्युत शक्ति संयंत्र लगभग 70 टन कोयले की राख प्रतिदिन आस-पास के क्षेत्रों में बिखेरता है। दिल्ली में स्थित दो तापीय विद्युत शक्ति स्टेशन लगभग 25,500 टन सल्फर डाइऑक्साइड और इतनी ही मात्रा में फ्लाई ऐश (राख) प्रतिवर्ष वातावरण में उड़ेलते रहते हैं। फलस्वरूप वातावरण कितना विषाक्त हो जाता है यह आसानी से समझा जा सकता है।

प्रति तापीय विद्युत स्टेशन द्वारा विद्युत उत्पादन की कुल लागत का लगभग 3/4 भाग केवल कोयले पर खर्च होता है। तापीय विद्युत शक्तिगृहों द्वारा वजन के हिसाब से कोयले की खपत प्रति वर्ष बढ़ती जा रही है। इसका मुख्य कारण है कोयले की गुणवत्ता और उसकी किस्म में निरन्तर गिरावट। न केवल निम्न स्तर और श्रेणी का कोयला इन तापीय गृहों को सप्लाई होता है अपितु उसमें अनेक बाह्य पदार्थ समाविष्ट होते हैं। फिर सल्फर डाइऑक्साइड की मात्रा कोयले में अधिक हो गई है। यदि कोयले में SO_2 की मात्रा कम हो जाती है तो वातावरण में विषैली गैसों का विसर्जन कुछ कम हो जाएगा और उसी अनुपात में वायु का प्रदूषण भी। इसलिए कोयला-चयन करते समय इस पर ध्यान देना आवश्यक है कि उसकी तापीय क्षमता कितनी है और उसमें राख की मात्रा कितनी है। विभिन्न स्टेशनों पर कोयले की खपत उसकी गुणवत्ता पर निर्भर करती है। सामान्यतया यह प्रति यूनिट उत्पादन के लिए 0.37 - 1.13 के.जी. है।

इस्पात उद्योग में सबसे खतरनाक गैस CO :

कार्बन मोनोऑक्साइड जो रंगहीन होती है, इस्पात उद्योग की सबसे खतरनाक गैस है। इसके तीव्रता से श्वास में जाने से मृत्यु हो जाती है। अधिक मात्रा में कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) गैस धमन भट्ठी एवं कोक ओवन में उत्पन्न होती है और इसकी सफाई करने के बाद जलावन के रूप में अन्य शॉप में इसका व्यवहार होता है। कार्बन मोनोऑक्साइड गैस की लीकेज ब्लास्टर फर्नेस, कोक ओवन बैटरीज और गैस पाइप लाईन से होती है।

कार्बन मोनोऑक्साइड की शरीर के हेमोग्लोबिन से संयोग करने की क्षमता 300 गुणा अधिक होती है जिससे शरीर में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है। CO गैस से अनिद्रा, थकावट, सिरदर्द, चर्म करा लाल होना, साँस लेने में कठिनाई जैसी तकलीफें होती हैं और व्यक्ति बेहोश हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में कामगार को स्वच्छ वायु के सम्पर्क में लाना जरूरी है। अन्यथा मौत हो जाती है। शरीर का हेमोग्लोबिन आक्सीजन के बदले में कार्बन मोनोक्साइड से संयोग करता है जिससे एक स्थिर कार्बोक्सी हेमोग्लोबीन यौगिक बनाता है। यह खून में ऑक्सीजन की पूर्ति में बाधक बनता है। कार्बन मोनोक्साइड के वातावरण में बहुत अधिक देर तक रहने से माँसपेशियों और ऊतकों को ऑक्सीजन मिलना बन्द हो जाता है और मृत्यु हो जाती है।

लौह और इस्पात उद्योग में स्टील बनाने हेतु कठिन प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है जहाँ आयरन, अयस्क, कोयला, डोलोमाइट इत्यादि को व्यवहार में लाकर ब्लास्ट

फर्नेस में चार्जिंग सिस्टम के द्वारा बेल के माध्यम से डालना पड़ता है, स्टोन की गर्म हवा से पिग आयरन बनता है, इसके बाद इस्पात गलनशाला 1-2 में भेजकर ऑक्सीजन गैस स्क्रेप, चूना की मदद से कनवर्टर में डालकर स्टील बनाया जाता है। कोक बनाने में कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फरडाइऑक्साइड, हाईड्रोकार्बन, हाइड्रोजन सल्फाइड, अमोनिया, नाइट्रोजन के ऑक्साइड और हाइड्रोजन साइनाइड जैसी खतरनाक गैसों का सामना करना पड़ता है। 1.3 टन कोयला को कोक ओवन बैटरी में जलाकर 0.8 टन कोक बनाकर 1 टन हॉट मेटल बनाया जाता है। SO_2 तथा NH_3 बहुत ही खतरनाक हैं जो मानव में बेहोशी एवं आँखों में जलन पैदाकर मौत का कारण बनता है।

गैस रिसाव की चेकिंग एवं नियंत्रण :

कार्बन मोनोऑक्साइड के लीकेज का पता ऑडियो विजुअल एलार्म सिस्टम के द्वारा लगाया जा सकता है तथा सेन्सर द्वारा प्रारम्भ में ही रिसाव का पता लगाया जा सकता है। एक गैस सेफ्टी उपकरण का उपयोग कार्यस्थल में अनिवार्य रूप से करना चाहिए। थर्मल पॉवर प्लांट में खासकर कोयले की राख, सल्फरडाइऑक्साइड गैस, तीव्र ध्वनि की उपस्थिति में काम करने वालों में अनेक बिमारियों को जन्म देती है जैसे श्वास-प्रणाली की तकलीफें, दमा, भीषण सर्दी, जुकाम, आँखों की बीमारी, अंधापन, रतौंधी, व्यावसायिक बहरापन, एक्जीमा, चर्मरोग आदि। साधारणतया कामगार को 90 डेसीबल के अन्दर की कार्य करना है, इससे अधिक ध्वनि में काम करने से बहरेपन व बीमार होने की संभावना बनी रहती है।

पर्यावरण ध्वनि संरक्षण आज से समय की पुकार है। हम ध्वनि के संसार में रहते हैं - दिन हो या रात्रि, सुबह हो या शाम हम कोई-न-कोई ध्वनि सुनते रहते हम ध्वनिशून्य संसार में नहीं रह सकते। शोर एक सापेक्षिक तथ्य है जिसे अनुभव के आधार पर श्रेणीबद्ध करना कठिन है क्योंकि जैसे कुछ व्यक्तियों को 'पोप' संगीत तीव्र शोर लगता है तो अन्य को मधुर लगता है। ध्वनि की प्रबलता तथा ऊर्जा में पारस्परिक संबंध होता है जिसमें प्रबलता का प्रसार अत्यधिक रहता है। ध्वनि यद्यपि काफी जटिल तरीकों से मापी जाती है, परन्तु सार्वजनिक रूप से इसकी इकाई 'डेसीबल' होती है। इसे डी.बी. (dB) द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। डेसीबल का नामकरण सर अल्फ्रेड बेल के कारण हुआ है, जिन्होंने सर्वप्रथम इसका प्रयोग तार की क्षमता की गणना में किया था। डेसीबल ध्वनि की तीव्रता या कानों तक पहुँची कोलाहलपूर्ण आवाज को मापता है। यह एक परम राशि नहीं है तथा हमेशा निर्देश मान द्वारा अनुपात के रूप में प्रदर्शित की जाती है। जिस यंत्र से ध्वनि की तीव्रता का मापन किया जाता है उसे 'शोर मापक यंत्र' या Decible-Meter कहा जाता है। डेसीबल एक लघुगणकीय अनुपात है तथा इसमें ध्वनि की क्षमता को 0 से 200 dB (डेसीबल) में व्यक्त किया जाता है। डेसीबल बेल का दसवाँ भाग होता है।

हमारे कान भी लघुगणक के पैमाने से ही सुनते हैं। यही कारण है कि हम ऊँची-से-ऊँची तथा धीमी से धीमी ध्वनि को सरलता से सुन लेते हैं। मनुष्य के सुनने की न्यूनतम सीमा 1 से 10 डेसीबल की होती है। जब ध्वनि का परिमाण 60 डेसीबल से अधिक होता है तो उसे 'शोर' कहते हैं। जैसे-जैसे ध्वनि का परिमाण बढ़ता जाता है, शोर हानिकारक होता जाता है। ध्वनि की प्रबलता नगरों में अपेक्षाकृत अधिक तथा ग्रामीण अंचलों में कम होती है। ध्वनि की तेज आवाज को सोन्स (Sones) में भी व्यक्त किया जाता है। मनुष्य 16 से 20,000 हर्ट्स तक की ध्वनि सुन सकता है तथा यह सीमा आयु या अन्य कारकों द्वारा कम होती जाती है। 16 हर्ट्स से नीचे के कंपनों को इंफ्रा-श्रव्य (Infrasonic) तथा 20,000 से ऊपर के कंपनों को अल्ट्रासोनिक (Ultrasonic) कंपन कहते हैं।

ध्वनि प्रदूषक के दुष्प्रभाव :

अब यह सर्वविदित तथ्य है कि ध्वनि या शोर प्रदूषण अवांछनीय होता है। यह हमारे कार्य कलापों को तीन प्रकार से प्रभावित करता है।

1) श्रव्य विज्ञान की दृष्टि से सुनने की प्रक्रिया को प्रभावित करता है।

2) जैव विज्ञान की दृष्टि से शरीर की जैविक क्रियाओं को प्रभावित करता है, तथा

3). व्यावहारिक दृष्टि से सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करता है।

दिल्ली के पालम हवाई अड्डे पर किये गए सामाजिक सर्वेक्षण के अनुसार 82% लोगों की यह आम राय थी कि वे हवाई अड्डे पर हवाई जहाजों के शोर के कारण सोने में बड़ी कठिनाई का अनुभव करते हैं। अतः निर्विवाद रूप से आवासीय क्षेत्र के समीप शोर प्रतिबंधित होना चाहिए। सोने में नियमित व्यवधान होने से मनुष्य में की शारीरिक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती है। एक अन्वेषण के अनुसार यदि रात्रि में सोते हुए व्यक्ति की नींद हर बार 20 से 40 डी.बी. के शोर से जो कि 20 सेकेंड रहे, टूट जाय, तब उससे श्वेत रक्त कणिकाएं ही रोग प्रतिरोधक होती हैं।

ध्वनि प्रदूषण का सबसे तीव्र प्रभाव कानों पर पड़ता है। बाहरी आवाजें हमारी भीतरी कान तक काक्लिया (Cochlea) के माध्यम से पहुँचती है। जब कोई जोर की आवाज होती है या धमाका होता है, तो सिलिया कान की सतह से चिपक जाती है और फिर इनके सीधे होने में थोड़ा समय लगता है। यही कारण है कि तेज धमाके के बाद कभी-कभी ऐसा होता है कि कुछ समय तक हमें कुछ भी नहीं सुनाई देता है तथा इनकी निरन्तरता बहरेपन का कारण बन जाती है।

रेडियोधर्मी विकिरण से बचाव :

रेडियोधर्मी विकिरण को आँखों से नहीं देखा जा सकता है पर ये रेडियोधर्मी पर्यावरण में फैलकर साँस द्वारा शरीर के अन्दर पहुँचकर हानि पहुँचाते हैं। विकिरण की मात्रा जितनी अधिक होगी, कामगारों की आयु की अवधि उतनी ही कम होगी। रेडियोधर्मी विकिरणों के सम्पर्क में कार्य करते समय पॉकेट रेडियेशन डेसीमीटर का व्यवहार किया जाता है। परीक्षण एवं रेडियोधर्मी में कार्यरत कर्मचारियों के लिए लेड एप्रोन फिल्म बैच आदि की व्यवस्था की जाती है। प्रत्येक माह में फिल्म बैच को भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र भेजा जाता है जो यह जानकारी देता है कि अमुक कामगार ने कितना रेडियोधर्मी एक्सपोजर ग्रहण किया है ताकि उसके मुताबिक उपचार किया जा सके। इसी प्रकार फाउन्डरी में कार्य करते समय सिलिका कण बालू से निकलता है। हवा में उपस्थित बालू के सूक्ष्म कण साँस नली के द्वारा यदि शरीर में प्रवेश करते हैं तो लम्बे अर्से के बाद काम करनेवाले को सिलेकासिस बीमारी होती है। धातुओं के फ्यूक्स जैसे ताँबा, जस्ता, पीतल, लेड स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। प्रदूषणों से विशेषकर गैस व फ्यूम से बचने के लिए जरूरी है कि फाउन्डरी शॉप में पूर्ण वेन्टीलेशन हो, जगह-जगह स्थानीय मेनकुलर/वेन्टीलेशन हो, पिघली धातु/भीषण गर्मी से बचने के लिए सही सूची कपड़े का ड्रेस पहना हो, और धूलकणों/ ग्रेफाइट डस्ट से बचाव के लिए पानी का समय-समय पर छिड़काव किया जाए, तभी कामगार सुरक्षित रहेगें।

द्रवित ऑक्सीजन से बचाव :

वायु प्रदूषण विविध प्रकार से हमें दुष्प्रभावित करता है। द्रवित ऑक्सीजन खुले वायुमण्डल में दौड़ देने पर भयंकर अग्निकांड का कारण बनती है। अत्यधिक ऑक्सीजन त्वरित जलन पैदा करती है जिस पर नियंत्रण रखना मुश्किल हो जाता है और महाप्रलयकारी विस्फोट हो जाता है। गलती से ऑक्सीजन राइन खोल देने से किसी को यह सामान्यतः अन्दाज नहीं होता है कि इसका नतीजा भयानक हो सकता है। ऑक्सीजन प्लान्ट में या द्रवित ऑक्सीजन भंडार के स्थान पर धूम्रपान या दियासलाई की तिली जलाना सुरक्षा की दृष्टि से मना है। आज विज्ञान तथा पर्यावरण के संदर्भ में लोगों का रुझान तो बढ़ा है परन्तु चिन्तन की अभी कमी है।

❖❖❖

अमृता (गिलोय) - यथा नाम तथा गुण

- सुभाष चन्द्र

राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ-226 001

हजारों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों ने प्रकृति द्वारा प्रदत्त उपयोगी वनस्पतियों का नामकरण उनमें विद्यमान गुणों एवं उपयोगिता के आधार पर किया था। ऐसी ही एक अति उपयोगी वनस्पति है अमृता (गिलोय)। वैसे तो इसका ज्ञान एवं उपयोग अति प्राचीन है। परन्तु इनमें विद्यमान गुणों के कारण ही पिछले कुछ दशकों से वैज्ञानिक भी आकृष्ट होकर इस पर बृहत अनुसंधान कार्य कर रहे हैं। प्रस्तुत लेख इसमें निहित असीमित गुणों एवं उपयोगों पर आधारित है।

वैसे तो अमृता (गिलोय) का इतिहास अतिप्राचीन है। इसका प्रमाण है हमारे वेद ग्रन्थ, जिनमें इसका वर्णन मिलता है। अथर्व वेद में वर्णित एक कथा के अनुसार राम-रावण के युद्ध में राम की सेना के मृतक वानरों को देवराज इन्द्र ने अमृत की वर्षा से सिंचित कर उन्हें जीवित कर दिया था। उस वर्षा में अमृत की जो बूंदे पृथ्वी पर गिर गई थीं, उन्हीं बूंदों से अमृता (गिलोय) की उत्पत्ति हुई।

तत्र ये वनराः केचिद्राक्षय सैर्निहता रणे।
ता निद्रोजीवयामास संसिच्यामृत वृष्टिभिः॥
तत्रों येषु प्रदेशेषु कपि गात्रात परिच्युताः।
पीयूष बिन्दवः पेतुष्तेभ्यो जाता गुडूचिका॥

अथर्ववेद, सू-25/1

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इसे ज्वर की अति उपयोगी औषधि मान कर जीवन्ती नाम दिया गया था तथा अमृत के समान गुणकारी होने के कारण इसे अमृता कहा गया। इसके अतिरिक्त गिलोय को ईश्वर द्वारा प्रदान की गई महौषधि एवं चिरयौवन देने वाली भी बताया गया है।

सन् 1889 में मेलबोर्न, ऑस्ट्रेलिया में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय चिकित्सा कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन में सर्वप्रथम डॉ. के. आर. कीर्तिकार ने गिलोय के औषधीय गुणों पर अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया था। ब्रिटिश फार्मास्यूटिकल कोडेक्स (1911) में भी गिलोय के गुणों एवं उपयोगों का वर्णन है। उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि गिलोय के गुणों एवं उपयोगों का ज्ञान भारतवर्ष में अतिप्राचीन है।

वानस्पतिक विवरण :

गिलोय को हिन्दी में गुर्च, गुरूची, जीवन्ती, अमृता आदि नामों से जाना जाता है। अंग्रेजी में इसे टाइनोस्पोरा तथा इसका वानस्पतिक नाम *टाइनोस्पोरा कार्डीफोलिया* मिरस तथा कुर मिनीस्परमेसी है। इसकी पाँच अन्य प्रजातियाँ *टी॰ मालाबारिका मिरस, टी॰ क्रिस्पा मिरस, टी॰ कैपीलिपिस गेनप, टी॰ डेन्टायडीनस* तथा *टी॰ ग्लेबरा मिरिल* भी है। इनका प्राप्ति स्थान एशिया, अफ्रीका एवं ऑस्ट्रेलिया है। गुणों एवं औषधि उपयोगी दृष्टि से टी॰ कार्डीफोलिया मिरस ही सबसे प्रमुख है तथा भारतवर्ष में प्रायः यह सभी गर्म जलवायु वाले प्रदेशों में प्रचुरता से पायी जाती है।

इसका पौधा बेल के रूप में झाड़ियों/पेड़ों पर चढ़कर फैलता है। इसके मुख्य तने से अन्य जड़ें धागे के रूप में निकलकर लटक जाती है। तत्पश्चात धीरे-धीरे मोटे तनों में परिवर्तित हो जाती है। इसके फूल छोटे तथा पीलापन लिये हुए हल्के हरे रंग के होते हैं, कच्चे फल हरे रंग के गुच्छों में तथा पकने पर लाल रंग के एक बीजीय तथा गूदेदार होते हैं। औषधि रूप में सपूर्ण पौधा प्रयुक्त होता है। परन्तु मुख्य रूप से इसका मोटा तना ही सर्वोत्तम माना जाता है।

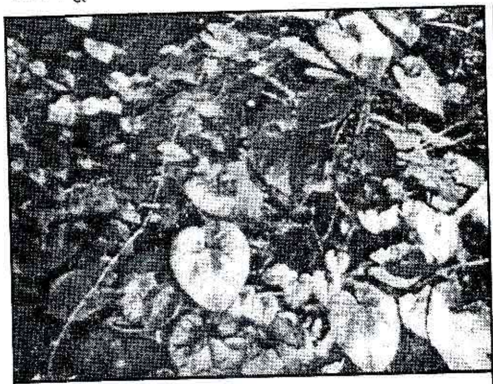

अमृता (गिलोय) का पौधा

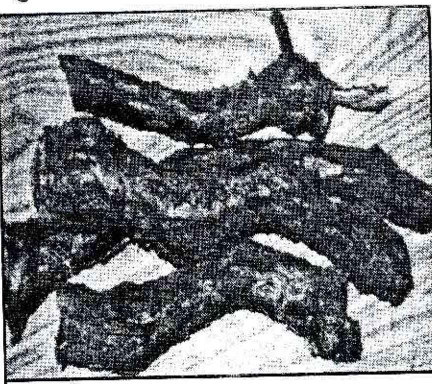

गिलोय का तना

गिलोय के फल

रासायनिक अपघटक– गिलोय का औषधीय महत्व एवं उपयोगिता इसमें निहित अनेक सक्रिय अवयवों के कारण ही है। इसके पौधे में विभिन्न वर्ग एवं समूहों जैसे एल्कलॉयड और डाइटर्पिनॉयड, लेक्टोन, ग्लाइकोसाइड, स्टिरोयड, सस्क्यूटर्पिनायड, फिनोलिक एवं ऐलीफैटिक यौगिक तथा पोलीसेक्राइड आदि रासायनिक अपघटक पाये जाते हैं। इन अपघटकों की क्रियाशीलता ही हमारे शरीर के विभिन्न रोगों के उपचार का कार्य करती हैं।

गिलोय के पौधे में विद्यमान प्रत्येक समूह के क्रियाशील रासायनिक अपघटकों का विस्तृत वर्णन तालिका–1 में दिया गया है।

तालिका - 1

पौधे का भाग	**रासायनिक वर्ग**	**क्रियाशील अपघटक**
जड़	एल्कलाइड	कोलीन, टाइनोस्पोरिन, आइसोकोलम्बिन, पामेटिन, टेट्राहाइड्रोपामेटिन, मैग्नोफ्लोरीन (0.075%) जेट्रोरहिजीन
तना	एल्कलाइड सस्क्यूटर्पिनायट एस्टरायड ग्लाइकोसायज टिनोसाइड मालाबोरासाइड	बरबेरिन, पामेटिन, टेम्बेटेरीन (0.012%), मैग्नोफ्लोरीन (0.075%) टाइनोकार्डीफोलीन इक्डास्टीरोन, मैक्सिटिरोन ए. गिलोइन स्टिरोयल 18–नारक्लीरोडेन ग्लूकोसाइड, फ्यूरानोएड डाई टरपीन ग्लूकोसाइड टिनोस्पोरोन, टाइनोकार्डियोसाइड, टाइनोकार्डिफोलियोसाइड ए. बी. सिर्रिजिन-एपिओसाइल ग्लाइकोसाइड, पामेटोसाइड सी तथा पी कार्डिफोलियोसाइड ए, बी, सी, डी, ई, सिनेपिक अम्ल, बोरापिटोसाइड एफ
नया पल्लवित तना	एस्टरायड	बीटा-सिटोस्टिरोल, डेल्टा-सिटोस्टिरोल, 20-बीटा-हाइड्रोएक्डास्टिरोन, फाइटोइक्डीसोन, मैक्सिटिरोन, इडिस्टीरोन, मैक्सिटिरोन ए, 20-बीटा हाइड्राक्सीइक्डीसोन
सूखा तना	कार्बोहाइड्रेट	अरेबिनोगैलेक्टेन, बीटा-1→ 4 ग्लूकॉन अनियमित शाखा
पत्तियां	प्रोटीन एवं अन्य तत्व	प्रोटीन (11.2%) तथा अल्प मात्रा में कैल्शियम एवं फॉस्फोरस
संपूर्ण पौधा	डाईटर्पिनायड लैक्टोन एलीफैटिक यौगिक लिनेन अन्य रसायन	फ्लूरानोलैक्टोन, क्लीरोडेन के संजात (Derivatives) टाइनोस्पोरान, टाइनोस्पोरीडिन, जेटियोरिन, कोलम्बिन, टाइनोस्पोरेसाइड, कार्डिफोल आक्टोकोसिनाल, हेप्टेकोसिनाल, नोनाकोसान-15-1 फिनालिक लिगनेन टेट्राहाइड्रोफ्यूशन, टाइनोस्पोरीडिन, कार्डीफाल, कार्डीफोलोन, टाइनोस्पोरिक अम्ल तथा गिलोइन

उपरोक्त रासायनिक क्रियाशील अपघटकों में कुछ प्रमुख अपघटकों की रसायनिक संरचना निम्नलिखित है —

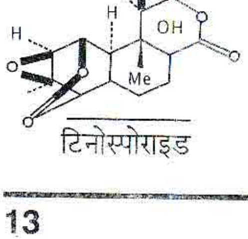

टिनोस्पोराइड

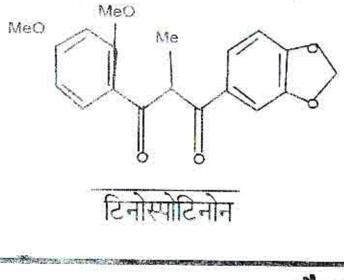

टिनोस्पोटिनोन

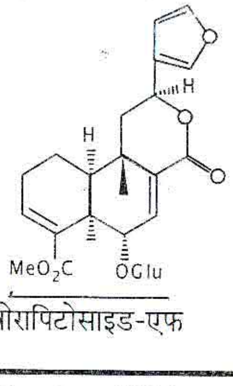

बोरापिटोसाइड-एफ

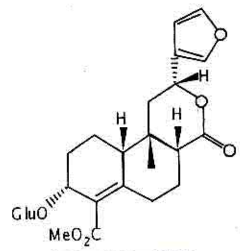

कार्डिफोलिसाइड

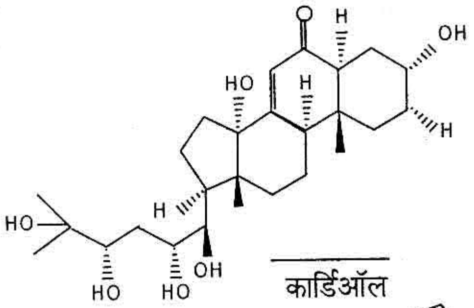

कार्डिऑल

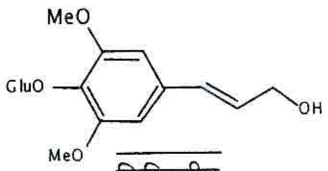

सिरिनजीन

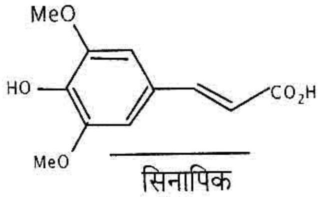

सिनापिक

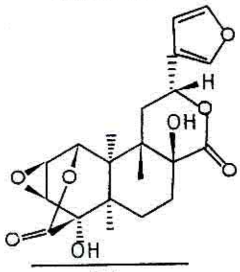

मालाबोरोलाइड

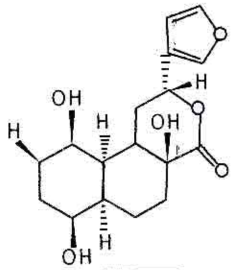

मालाबोरोलाइड

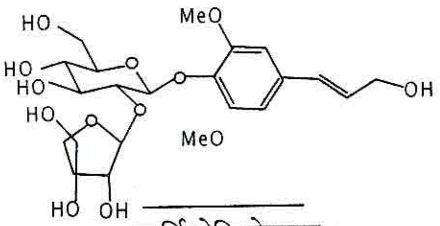

कार्डिफोलियोसाइड

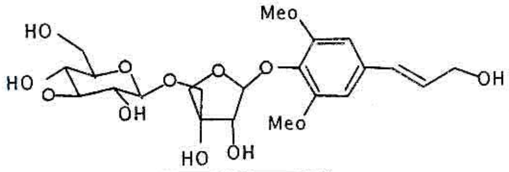

कार्डिफोलियोसाइड-बी

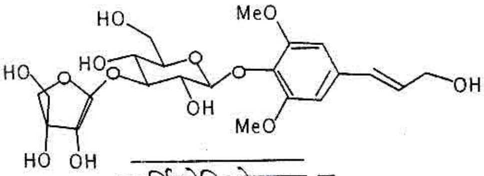

कार्डिफोलियोसाइड-ए

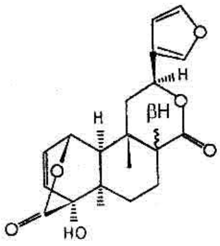

कोलंबीन

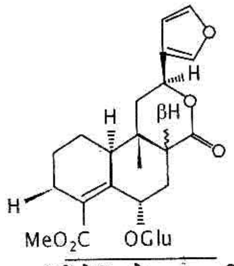

कार्डिफोलियोसाइड-सी

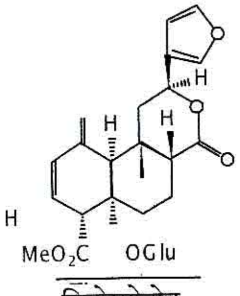

टिनोस्पोनोन

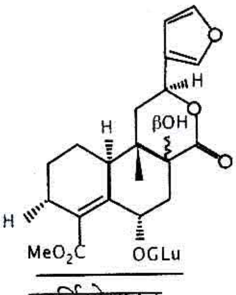

कार्डियोसाइड

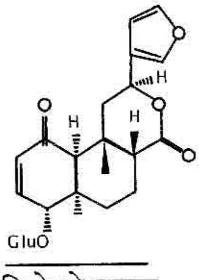

टिनोस्पोरासाइड

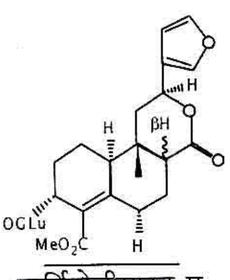

कार्डियोलीसाइड-ए

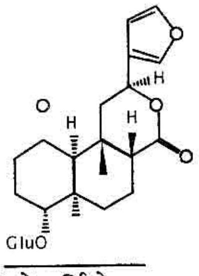

टिनोकार्डियोसाइड

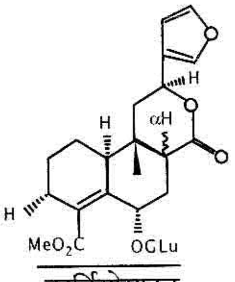

कार्डियोसाइड

इसके अतिरिक्त गिलोय में कुछ विशेष वर्ग के अनुकूलित क्रियाशील अपघटक (Adaptogenic Active Constituents) टाईटर्पिन यौगिक जैसे टाइनोस्पोरेन, टाइनोस्पोरिक् अम्ल, कार्डीफोलिसयोंसाइड ए, बी, सी, डी तथा ई, सिरिंजिन, पीले रंग के एल्कलायड जैसे बरबेरिन, गिलोइन, गिलोइनीन तथा ग्लाइकोसाइडों में ऐरोविनोगेलेक्टेन पोलीसेक्राइड आदि पाये जाते हैं। यहाँ पर ADAPTOGENIC शब्द को परिभाषित करना पूर्णतः न्यायसंगत होगा। 'ADAPTOGENIC' शब्द 'ADAPTOGEN' (अनुकूलक) से बना है। एडेप्टोजन शब्द का प्रयोग चिकित्सक एक ऐसे वानस्पतिक उत्पाद के लिए करते हैं जो हमारे शरीर में तनाव, मानसिक आघात, चोट, थकान तथा चिन्ता के लिए प्रतिरक्षण क्षमता में वृद्धि करते हैं। प्राचीन काल में इन्हें पुनर्युवनिक, टॉनिक रसायन या पुनः स्थापक कहा जाता था। सभी अनुकूलक आक्सीकरण रोधी होते हैं। परन्तु सभी आक्सीकरण रोधी अनुकूलक नहीं होते। एडेप्टोजन की संकल्पना हजारों वर्ष पूर्व भारतवर्ष एवं चीन में की गई थी। परन्तु सन् 1940 तक इस पर कोई वैज्ञानिक शोध कार्य नहीं हो सका। सन् 1947 में वैज्ञानिक निकोलई लाजरेव ने इसे नये रूप में पारिभाषित किया। इनके अनुसार एडेप्टोजन वे कारक हैं जो हमारे शरीर में भौतिक, रासायनिक तथा जैविक तनाव उत्पन्न करने वाले कारकों के प्रति प्रतिरोधी क्षमता उत्पन्न करते हैं। सन् 1968 में डॉ० इजरायल आई ब्रेखमैन एवं आई० बी० डार्डिमोव ने इसे अपने अनुरूप परिभाषित किया। इनके अनुसार –

1. एडेप्टोजन ग्रहण करने वाले के लिए विषरोधी होते हैं।
2. एडेप्टोजन शरीर में विशिष्ट प्रकार की क्रिया उत्पन्न करते हैं जिससे भौतिक, रसायनिक तथा जैविक अभिकर्मकों द्वारा उत्पन्न तनाव के विरुद्ध प्रतिरक्षण शक्ति में वृद्धि होती है।
3. एडेप्टोजन में शरीर क्रिया विज्ञान को सामान्य रखने का गुण भी होता है।

इस बात का भी दावा किया गया है कि एडेप्टोज वाली वनस्पतियां प्रतिरक्षण प्रणाली, एन्डोक्राइन हार्मोन्स को संतुलित करने की क्षमता रखती है एवं शारीरिक उपापचयी क्रियाओं को सदैव सामान्य रखती है।

गिलोय के औषधीय गुण :

जहाँ तक गिलोय में विद्यमान औषधीय गुणों की बात है इसके नामों जैसे अमृता जीवन्ती आदि से ही इसके गुणों की पुष्टि हो जाती है तथा इसमें विद्यमान अनेकों क्रियाशील रसायन भी इसके गुणों की ही व्याख्या हैं तथापि इसके प्रत्येक भाग में निहित औषधीय गुणों का वर्णन तालिका-2 में दिया गया है।

तालिका–2

पौधे का भाग	औषधीय/रोगशामक गुण
जड़	सर्प एवं मकड़ी विषरोधी, रक्त शर्करा नियंत्रक, मस्तिष्क वसा नियंत्रक ऑक्सीकरण रोधी उतक कोलेस्ट्रॉल सीरम, फास्फोलिपित एवं स्वतंत्र वसीय अम्ल को कम करना, अल्फाटोकोफिराल को कम करना, तनाव प्रतिरोधी, ज्वर रोधी, कुष्ट रोधी।
तना	उच्च रक्त शर्करा नियंत्रक, प्रतिरक्षण अनुकूलन क्रियाशीलता, कवक रोधी, तनाव रोधी, ज्वर रोधी, सर्प एवं मकड़ी प्रतिविष, हिपिटाइटिस बी रोधी, दर्दनिवारक, गठिया रोधी प्रतिरक्षण तंत्र की क्रियाशीलता में वृद्धि।
पल्लवित तना	क्षय विषाणु रोधी, ज्वर रोधी श्वास नलिका संक्रमण रोधी, चिरकालिक कर्ण शोथ रोधी, साइकोटाइन उत्पादन पर प्रभाव, प्राकृतिक हन्ता कोशिकाओं (Natural Killer Cells) के उत्प्रेरण में वृद्धि CYP-450 एन्जाइमों की क्रियाशीलता में वृद्धि।
सूखा तना	ज्वर एवं दर्द रोधी, एलर्जी रोधी, कष्ट रोधी, संस्तम्भी रोधी, बी कोशिकाओं के विरुद्ध बहुक्लोनी मैटोजिनिक क्रिया।
पत्ती	रक्त शर्करा वृद्धि रोधी।
सूखे तने की छाल	आकर्षी प्रतिरोधी, ज्वर रोधी, एलर्जी रोधी, दर्द रोधी कुष्ठ रोधी।

गिलोय के पौधों में निहित क्रियाशील रसायन औषधीय गुणों से परिपूर्ण होने के कारण हमारे शरीर के अनेकों रोगों को समाप्त करने में सक्षम हैं। उपरोक्त तालिका में वर्णित रासायनिक अपघटकों की हमारे शरीर में होने वाली क्रियाओं का विस्तृत विवरण निम्नलिखित है।

ऑक्सीकरण प्रतिरोधी क्रिया :

गिलोय के आक्सीकरण प्रतिरोधी गुणों का अध्ययन इसके जलीय निष्कर्षण को डायबिटिक चूहों पर किया गया तथा छः सप्ताह बाद यह पाया गया, कि सिरूलो लाज्मिन (प्लाज्मा डायोबिट्यूरिक अम्ल प्रतिक्रियात्मक पदार्थ) एवं टोकोफिरोल का स्तर कम हो गया जबकि ग्लूटेथाइयोन तथा विटामिन सी के स्तर में वृद्धि हुई। उपरोक्त अध्ययन में गिलोय की जड़ के निष्कर्षण की 5 ग्राम/किलोग्राम की मात्रा सर्वाधिक प्रभावी सिद्ध हुई। एक अन्य अनुसंधान द्वारा भी यह सिद्ध हुआ कि गिलोय निष्कर्षण वसा–प्राक्सीडेसन, सुपरआक्साइड तथा हाइड्रोक्सिल मूलकों के जनन को रोकता है। चूहों पर एक अन्य प्रयोग से भी इसमें विद्यमान आक्सीकरण प्रतिरोधी गुणों की पुष्टि हुई जैसे नाइट्रिक आक्साइड सिन्थेज क्रिया को रोकना तथा इसके स्वतन्त्र मूलक का सीधे अपमार्जन आदि।

प्रतिरक्षा माडुलकीय क्रिया :

विभिन्न शोधों से यह ज्ञात हुआ कि गिलोय में विद्यमान क्रियाशील अपघटक जैसे सिरिंजीन, कोर्डिओल, कार्डियोसाइड, कार्डिफोलियोसाइड ए, बी, डी प्रतिरक्षण माडुलकी क्रिया के लिए अग्रणी है। उपरोक्त क्रिया की संभावित क्रिया विधि के अन्तर्गत मैक्रोफेजेज की सक्रियता, कणिकाणु महाभक्षी उपनिवेश उत्तेजना कारक क्रिया में वृद्धि का नेतृत्व करना, श्वेताणु वृद्धि एवं न्यूट्रोफिल क्रिया को सुधारना आदि आते हैं। इसके अतिरिक्त त्रिदोषन एवं कोशिका मध्यवर्ती प्रतिरक्षण में वृद्धि के साथ सीरम में IgG प्रतिपिण्डों में वृद्धि भी करते हैं। उपरोक्त प्रभावों का अध्ययन *ई० कोली* कवक द्वारा प्रेरित पयुदयी शोध में किया गया तथा जिन्टेमिसिन से इसकी तुलना की गई।

यकृत संरक्षी क्रिया :

बकरियों पर किये गये शोध द्वारा लीवर के चिकित्सकीय एवं रूधिर जैव रसायन मापदण्डों में सुधार देखा गया जो कि गिलोय की सुरक्षात्मक क्रिया को प्रदर्शित करता है। इसके अतिरिक्त कार्बन टेट्रोक्लोराइड प्रेरित खराब यकृत में भी गिलोय की यकृत संरक्षी क्रिया की पुष्टि की जा चुकी है। एक अन्य अनुसंधान में इसके प्रयोग से चूहों के इन्फाकिट आकार में कमी पाई गयी तथा कार्बन टेट्रोक्लोराइड से घायल चूहों में सिरम, मिलीरूबिन सिरम, क्षारीय फास्फेटेज ALT तथा AST यकृत संरक्षण के साथ सामान्य स्तर पर वापस आ गये।

कैन्सर प्रतिरोधी क्रिया :

गिलोय के साथ अश्वगन्धा तथा सतावर द्रव्यों को मिलाकर चूहों पर किया गये अनुसंधानों के परिणाम स्वरूप यह निष्कर्ष निकला कि चूहों में यह इन्टरल्यूकिन–1 के उत्पादन, किमोटेटिक की क्रियाशीलता को पूर्ण रूप से समाप्त कर देता है तथा कार्सिनोजिन ओकरेटाक्सिन प्रेरित अर्बुद के आकार में कमी तथा उत्तरजीविका समय में वृद्धि करने की क्षमता है। एक अन्य शोध से ज्ञात हुआ कि गिलोय के एल्कोहलीय निष्कर्षण की अल्पमात्रा के प्रयोग से बोन मैरो कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि हुई जबकि उच्च मात्रा के प्रयोग से इन कोशिकाओं की संख्या कम हो गई। इसके अतिरिक्त अर्बुद की वृद्धि दर में अत्यधिक कमी, उत्तरजीविता समय में वृद्धि तथा थाइमस होम्योस्टेरिस को पूर्णतः ठीक करने की भी क्षमता है।

नियोप्लास्टिक प्रतिरोधी क्रिया :

विभिन्न शोधों से यह ज्ञात हुआ है कि गिलोय का जलीय, मेथेनाल एवं डाइक्लोरोमीथेन का निष्कर्ष in vitro HeLa कोशिकाओं के लिए घातक है। इनमें सबसे अधिक सक्रियता डाईक्लोरोमीथेन के निष्कर्षण में पाई गई।

अल्सर प्रतिरोधी क्रिया :

गिलोय की छाल के एल्कोहल निष्कर्षण को ब्राह्मी के साथ मिलाकर चूहों पर परीक्षण करने के परिणाम स्वरूप यह ज्ञात हुआ कि तनाव से प्रेरित अल्सर की उत्पत्ति में यह अत्यधिक सुरक्षात्मक एवं प्रभावी है। उपरोक्त परिणाम की तुलना चूहों में डाईयाजिपेम से भी की गई।

एलर्जी प्रतिरोधी क्रिया :

उपरोक्त क्रिया की पुष्टि के लिये गिलोय के जलीय निष्कर्षण को गेनिया, सुअरों एवं चूहों पर परीक्षण किया गया। परिणाम स्वरूप यह सुअरों में ब्रोम्कों स्पेम को कम करता है साथ ही चुहियों की कोशिकाओं में व्याप्तता वृद्धि तथा चूहों में विघटित मसतूल (Mast) कोशिकाओं की संख्या को भी कम कर देता है।

तनाव प्रतिरोधी क्रिया :

चूहों पर किये गये अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि गिलोय की जड़ के एल्कोहल निष्कर्षण में नोरपाइनफ्रीन, डोपामीन, 5-हाइड्राक्सी ट्रिप्टेमाइन एवं हाइड्राक्सीइन्डोल एस्टिक अम्ल में तनाव से प्रेरित जैव रसायनिक परिवर्तनों के स्तर को सामान्य करने की क्षमता है। एक अन्य चिकित्सीय शोध से भी ज्ञात हुआ है कि गिलोय का प्रयोग बच्चों के मानसिक व बुद्धिमत्ता के सम्पूर्ण विकास में अत्यन्त प्रभावशाली है।

रक्तशर्करा वृद्धि प्रतिरोधी क्रिया :

इस क्रिया के अध्ययन एवं सत्यापन के लिये गिलोय की पत्तियों व जलीय एल्कोहल तथा क्लोरोफार्म निष्कर्षण का प्रयोग सामान्य एवं एलोक्जेन उपचारित चूहों पर क्रमशः 50, 100, 150, 200 मिलीग्राम/किलोग्राम शारीरिक भार की मात्रा के अनुपात में किया गया। परिणामस्वरूप यह पाया गया कि एलेक्जोन उपचारित मधुमेह वाले चूहों की रक्तशर्करा एवं मस्तिष्क लिपिड में अत्यधिक कमी हुई है तथा हीमोग्लोबिन एवं यकृत काइनेज के स्तर में वृद्धि के साथ शारीरिक भार में भी वृद्धि हुई। इसके अतिरिक्त हिपेटिक ग्लूकोज-6-फास्फेटेज, सिरम, अम्लीय फास्फेटेज, क्षारीय फास्फेटेज एवं लेक्टेट डिहाइड्रोजिनेज का स्तर भी कम हो गया। एक अन्य शोध में गिलोय के जलीय निष्कर्षण को मधुमेह युक्त कई पशुओं को 400 मि.ग्रा./किलोग्राम के अनुपात में दिया गया। परिणामस्वरूप इनकी रक्तशर्करा कम करने में अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुआ। उपरोक्त प्रभावी केवल 1 मात्रक/किग्रा. इन्सूलिन के बराबर थी।

कवक प्रतिरोधी क्रिया :

विभिन्न प्रयोगों एवं अनुसंधानों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि गिलोय में कवक प्रतिरोधी गण विद्यमान है। इसका सबसे अधिक प्रभाव *ई. कोली* कवक पर पाया गया है।

दर्द प्रतिरोधी क्रिया :

इस क्रिया के अध्ययन के लिये गिलोय के निष्कर्षण का प्रयोग फार्मेलिन प्रेरित गठिया पीड़ित नमूनों पर किया गया तथा इसके प्रभाव की तुलना हिण्डोमीथेसिन नमूनों के साथ करने पर यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि इसकी क्रिया विधि नॉनस्टेरॉयडल (non-steroidal) दर्द प्रतिरोधी कारक के समान है। एक अन्य शोध में गिलोय के सूखे तने के निष्कर्षण को तीव्र व कम दर्द के नमूनों पर प्रयोग करने पर यह ज्ञात हुआ कि उपरोक्त दोनों प्रकार के दर्द में यह अत्यन्त प्रभावी है तथा तीव्र दर्द में यह ऐसीटाइल सैलीसिलिक अम्ल से भी अधिक प्रभावी है। एक चिकित्सीय परीक्षण में गिलोय से तैयार की गई **''रूमालियां'** औषधि को गठिका से ग्रसित रोगी पर प्रयोग करने पर उसके तीव्र दर्द में अधिक कमी पाई गई।

इसके अतिरिक्त भारतीय चिकित्सा प्रणाली में गिलोय का उपयोग प्रतिरक्षा उद्दीपक के रूप में शताब्दियों पूर्व से होता रहा है।

आयुर्वेद के अनुसार गिलोय के गुण :

गिलोय के गुणों एवं उपयोगों का वर्णन हमारे विभिन्न आयुर्वेदिक ग्रन्थों में किया गया है। भारतीय संस्कृति में तो गिलोय का ज्ञान अतिप्राचीन है क्योंकि एलोपैथिक औषधियों का इतिहास तो मात्र 100-150 वर्ष पुराना है जबकि वानस्पतिक औषधियों का उपयोग को कई हजार वर्षों से सभी लोगों के उपचार हेतु किया जाता था। विभिन्न आयुर्वेदाचार्यों एवं ग्रन्थों के अनुसार गिलोय के गुणों का विवरण निम्नलिखित है –

1. महर्षि चरक के अनुसार गिलोय के रस के नियमित सेवन से बल, बुद्धि, आयु, वीर्य एवं वर्ण में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त उन्होंने उसे संधानीय विपासा नाशक, दाह, प्रशमन, स्नेहोपग, स्तन्य शोधाक, त्रष्णा निग्रह, आराग्वधादि, श्यामादि, पटोलाधि, काकोल्यादि तथा वात पर भी माना है।
2. आचार्य सुश्रुत के अनुसार गिलोय तिक्त, रसयुक्त, रक्त शोधक तथा पित्त एवं कफ नाशक है।
3. आचार्य बाग्भट्ट ने इसे प्रमेह मधुमेह, ज्वर, रसायन तथा सुजाक की अचूक औषधि माना है।
4. आयुर्वेदाचार्य चक्रदत्त के अनुसार गिलोय त्रिदोष नाशक, ज्वर, कुष्ठ, दर्द, सुजाक एवं स्लीपद की श्रेष्ठ औषधि है।
5. आयुर्वेदिक ग्रन्थ भाव प्रकाश के अनुसार :

   गुडूची, काटुका, तिक्ता, स्वादुपाका रसायनी ।।
   संग्रहणी कषायोष्णा लघ्वी वल्याग्निदीपनी ।
   दोष तृषामृतड्दाहमेह काक्षांश्रय पान्डुताम ।।
   कामला कुष्ठ वाता स्त्रज्वर क्रिमिवमीन हरेत ।
   प्रमेह श्वासकासार्शः कृच्छ हृदोगवातनुत ।।

   (भाव प्रकाश 10 गुडुच्यादि वर्गः)

   भाव प्रकाश के अनुसार गिलोय कडुवी, चरपरी, रसयुक्त, विपाक में मधुर, रसायन, ग्राही उष्णवीर्य, बलकारक, अग्निदीपक तथा त्रिदोष, आमवात, तृषा,

दाह, मेह, कास, पान्डुरोग, कामला, वातरक्त, ज्वरक्रिमी, प्रमेह, श्वास, अर्श, मूत्र, कृच्छ, हृदय रोग एवं वातनाशक है।

6. धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार गिलोय आयुवर्धक, बुद्धि वृद्धि कारक, त्रिदोश नाशक, काण्डु तथा विषर्पनाशक है तथा इसका घी के साथ सेवन वात को, गुड़ के साथ मलवद्धता को, मिश्री के साथ पित्त को, शहद के साथ कफ को, एरंडी के तेल के साथ वात रक्त को तथा सोंठ/अदरख के साथ सेवन करने से आमवात को नष्ट करती है।

7. यूनानी चिकित्सा पद्धति के अनुसार गिलोय उष्ण एवं स्निग्ध है। यह सभी प्रकार के ज्वरों को नष्ट करने के साथ हृदय अमाशय व यकृत के सूजन को समाप्त कर देती है। यह काश, आमला, वमन, मूर्छा में लाभप्रद होने के साथ कामशक्ति एवं भूख में वृद्धि करती है तथा प्रमेह एवं सूजाक में भी लाभ पहुँचाती है।

गिलोय सत :

गिलोय के तनों से प्राप्त होने वाला सफेद रंग का पाउडर गिलोय सत कहलाता है। इसे निकालने के लिए ताजे एवं मोटे तनों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर उन्हें अच्छी तरह कूट लिया जाता है तत्पश्चात इन टुकड़ों को एक बड़ी टब में पानी की अधिक मात्रा के साथ 10–15 मिनट तक अच्छी तरह मसला जाता है। मसलने के उपरान्त इन टुकड़ों को टब से बाहर निकाल लेते हैं तथा टब के पानी को 1 घण्टे के लिये स्थिर होने के लिए छोड़ देते हैं। बाद में सावधानी पूर्वक धीरे-धीरे टब के पानी को गिरा दिया जाता है तथा टब की तली में सफेद रंग का पदार्थ इकट्ठा हो जाता है। इसे बाहर निकालकर छाया में सुखा लेते हैं यही गिलोय सत कहलाता है। गिलोय के मोटे तने में इसके सत की प्रतिशत मात्रा 1.25 होती है। इस सत को गिलोय स्टार्च भी कहा जाता है। इसमें विद्यमान प्रमुख क्रियाशील रसायन एरोबिनों गैलेक्टेन तथा–1–3–बीटा–डी ग्लूकान होते हैं। यह सत औषधीय दृष्टि से अति उपयोगी है।

गिलोय सत के गुण :

राज निघन्टु के अनुसार गिलोय का सत स्वादिष्ट, नेत्रों के लिये लाभप्रद, कटु, पथ्य, दीपन, धातुवर्धक, मेधाजनक, अवस्थास्थापक (आयु को स्थिर करने वाला) वात रक्त दोतिष, पान्डुरोग, तीव्र एवं जीर्ण ज्वर, वमन, पित्त, वायल्प, प्रमेह, अरुचि, श्वास, खांसी, बवासीर, क्षय, दाह, मूत्रकृच्छ, प्रदर, पित्त प्रमेह, शर्करा (डायबिटीज) आदि रोगों को समूल नष्ट कर देता है। विभिन्न आयुर्वेदिक औषधि निर्माताओं द्वारा विभिन्न रोगों के लिए गिलोय को अकेले अथवा अन्य औषधि द्रव्यों के साथ मिलाकर कुछ विशिष्ट योग भी तैयार किये जा रहे हैं जो बाजार में प्रचुरता से उपलब्ध है। जैसे अमृता सत्व, संशमनीबटी, गुडुच्यादि मोदक, अमृताद्यरिष्ठ, गुडुच्यादि क्वाथ, वृहद गुडुच्यादि, क्वाथ (सर्वज्वर हेतु), अमृतादि क्वाथ, अमृताष्टक क्वाथ, अमृताघृत गुडुच्यादि रसक्रिया गुडुचिहिम आदि। ❖❖❖

विज्ञान कविता

सितारों के संकेत

कैसे ढूँढ़े उत्तर दक्षिण, पूरब पश्चिम रातों में,
कौन हमें बतलायेगा? अरे, तारे तो हैं रातों में।

आओ सीखें भाषा इनकी, इनकी बोली, इनके गीत,
इनसे जिसने करी दोस्ती, होती उनकी हर दम जीत।

दिशा ज्ञान जो करना हो तो ढूंढो पहले ध्रुव तारा,
सप्तऋषि का दोस्त है पक्का, शर्मिष्ठा को है प्यारा ।

सात सितारों वाला ढूँढो, प्रश्न बड़ा आकाश में,
फिर जल्दी से मिल जायेगा, ध्रुव तारा भी पास में।

प्रश्न चिन्ह के ऊपरी तारे, ध्रुव संकेतक कहलाते,
इन तारों की दूरी से, गर पाँच गुना आगे जाते,
देखो, सब देखो, अरे देखो, ध्रुव तारा हम पा जाते।

सप्तऋषि जब सो जाता तब जग जाती है शर्मिष्ठा,
अंग्रेजी के एम या डब्ल्यू अक्षर जैसी शर्मिष्ठा,
ध्रुव तारे का पता हमें बतला देती है शर्मिष्ठा।

ध्रुव तारे को ढूंढ निकाला यही तो उत्तर है अपना,
पीठ के पीछे दक्षिण होगा, जो उत्तर को मुँह अपना।

दायें पूरब, बायें पश्चिम, दोनों दिशाएं हाथों में,
कैसे ढूंढ उत्तर दक्षिण, पूरब पश्चिम रातों में,
कौन हमें बतलायेगा? अरे, तारे तो हैं रातों में ।

– मधुर मोहन मिश्र
जी-3, मॉडल स्कूल कॉलोनी,
बड़वानी (म.प्र.) - 451 551

आधुनिक खेती से प्रभावित होती मधुमक्खियां

- डॉ. सविता गुप्ता
कृषि ज्ञान केंद्र, 128, सिविल लाइंस, गोण्डा, उ. प्र.

उचित जानकारी के अभाव में कृषक अपनी फसलों को खरपतवार तथा हानिकारक कीटों से बचाने के लिए अन्धाधुंध कीटनाशियों का छिड़काव करते हैं। इसके कारण जीवों के भोजन-चक्र' से संबंधित सभी चीजों से एक असंतुलन आने लगता है और यदि इसे ना रोका गया तो यह एक विकराल रूप धारण कर लेगा। इसी चक्र में मधुमक्खियों का स्थान परागण-प्रक्रिया में महत्वपूर्ण है। इनकी संख्या में कमी होने के कारण खाद्यान्नों के उत्पादन में भी भारी कमी आयेगी। प्रस्तुत लेख में विभिन्न कीटनाशकों की विषाक्तता का वर्णन किया गया है और साथ ही कीटनाशकों के प्रयोग में सावधानियों को भी चर्चा की गई है।

फसल सुरक्षा के लिए अपनाये जाने वाले तरीकों में से किसानों को सबसे सरल और लाभदायक लगता है कीटनाशकों का छिड़काव करना। कीटनाशकों के बढ़ते प्रभाव ने हमारे पर्यावरण को भी दूषित कर दिया है जिसके कारण न केवल मिट्टी अपितु हवा, पानी और भूगर्भ जल भी प्रदूषित होकर विषाक्त हो गये हैं। अब माँ के दूध में डी.डी.टी. का तत्त्व मिल रहा है तो फिर अनाज फल सब्जियां, तेल आदि उपभोग की वस्तुएं कहाँ तक बच सकती है। जहाँ सन 1970-71 में 150 मीट्रिक टन कीटनाशक दवाओं का प्रयोग होता था वहीं आज यह बढ़कर 90,000 मीट्रिक टन हो गया है। खरपतवार नाशक एवं रोग नाशक रसायनिक दवाओं के अधिक प्रयोग से देश के द्वारा निर्यातित अनाज फल, सब्जियां, मांस, च्यवनप्राश आदि में इन रसायनों के अवशेष गाए जाने के कारण यह विदेशों से वापिस किये जा रहे हैं। कीटनाशकों का फसल पर लगातार छिड़काव करने वाले किसानों ने आज तक कभी यह विचार करने की आवश्यकता ही नहीं समझी की इस विष का प्रभाव हमारे पर्यावरण के साथ ही साथ मिट्टी और वातावरण में रहने वाले लाभकारी कीटों पर भी पड़ रहा है। प्रकृति में पाए जाने वाले सभी कीट पौधों के लिए हानिकारक नहीं होते है वरन् कुछ कृषकों के मित्र कीट भी होते हैं जो हानि पहुँचाने वाले कीटों के परभक्षी होते हैं तथा उनको खा कर प्रकृति में एक संतुलन बनाए रखते हैं। प्रकृति में ***'जीवो जीवस्य भोजनम्'*** का नियम चलता है। अतः कीटनाशकों के प्रयोग के बिना भी शत्रु एवं मित्र कीटों में एक संतुलन बना रहता है।

परागण में सहायक मधुमक्खियाँ, भौरें, तितली भूमि में पाये जाने वाले केंचुएं आदि सभी लाभकारी जीवों की श्रेणी में आते हैं। इन्हीं लाभकारी कीटों में से मधुमक्खी भी एक है जो फूलों पर मंडराती है उनसे परागकण एवं मकरंद एकत्र करते हुए उनका परागण करती है और मधु बनाती है। हमारे भोजन का एक तिहाई भाग मधुमक्खी के द्वारा परागण करने पर ही निर्भर करता है। अगर इसी तरह कीटनाशियों के प्रयोग से इनकी जनसंख्या लगातार कर होती जाएगी तो भोजन उत्पादन भी प्रभावित होगा। मधुमक्खी के लिए सभी पुष्पी पादप समान रूप से पराग और मकरंद उपलब्ध नहीं कराते हैं वरन् कुछ मुख्य स्रोत हैं क्योंकि इन पौधों के पर्याप्त मात्रा में पराग और मकरंद मिलते हैं जैसे सरसों, अरहर, तिल, लीची, सेब, नासपाती, आडू, बॉटलबश, सहजन, सेमल, बांकस, जामुन, महुआ, करंज, बरसीम, नींबू जाति, सूरजमुखी, मौलसरी आदि मकरंद के प्रमुख स्रोत हैं इसके अतिरिक्त मक्का, धनिया, सौंफ, कुसुम, आँवला, नीम, अमरूद, कद्दू, खीरा, अमलतास, गाजर, प्याज, मूली आदि पराग के स्रोत के साथ कुछ मात्रा में मकरंद भी उपलब्ध कराते हैं।

व्यस्क मधुमक्खी और इल्ली के विकास के लिए प्रोटीन की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त नवजात कमेरी में हाइपोफेरिंजियल ग्रंथि के विकास के लिए प्रोटीन बहुत जरूरी है। मधुमक्खी को यह प्रोटीन पराग खाने से प्राप्त होती है। एक मधुमक्खी के पालन पोषण के लिए 3.2 मिग्रा. नत्रजन की आवश्यकता होती है जो 100 मिग्रा. पराग से मिलती है। अतः एक पौण्ड पराग से 4500 मधुमक्खियों

का पालन पोषण किया जा सकता है।

मधुमक्खी बहुत अच्छी आयनिक विकरण नापने का माध्यम होती है। यह पर्यावरण की पर्यवेक्षक होती है। यह प्राकृतिक और मानव निर्मित परागकणों के संपर्क में स्वतः आ जाती हैं जिनमें भारी धातु और कीटनाशक शामिल होते हैं। यह उनके रोएंदार शरीर से चिपक जाते हैं और उनके छत्ते में चले जाते हैं जहाँ वह मोम व शहद का निर्माण करती हैं। शोधकर्ता मधुमक्खी का प्रयोग प्रदूषण को एकत्र करने में करते हैं जिनमें भारी धातु, रेडियो एक्टिव तत्त्व व कीटनाशी शामिल होते हैं। यह उनके छत्ते में एकत्र होते हैं। मधुमक्खी का जिनोम तैयार करने वाले वैज्ञानिकों ने पाया कि इसके शरीर से जहर बाहर निकालने वाले तथा बीमारियों से लड़ने वाले जीन नहीं होते हैं। बिजली घर पारे का सबसे अधिक उत्सर्जन करते हैं यह हवा में 48 टन पारा प्रतिवर्ष उत्सर्जित करते हैं। वन्य जीवों में भी पारे का प्रभाव तेज़ी से बढ़ रहा है।

जीन संवर्धित फसलें (जी.एम. फसलें) :

जन संवर्धित मक्का, गेंहूँ आदि से तितलियों की मौत हो जाती है। जर्मनी में किए गए एक शोध के अनुसार रेपसीड की जीन संवर्धित फसल पर मखुमक्खियां छोड़ी गई तो वह पराग कणों को अपने छत्ते में नवजातों के लिए ले गई जब इन युवा मखुमक्खियों का विश्लेषण किया गया तो इनमें वही जीन मिला जो पौधों में था। जीन संवर्धित मक्का जिसमें बी.टी. जीन्स थे उनका परागकण प्रयोग करने पर मखुमक्खियों में नोसीमा नामक फफूँद से लड़ने की क्षमता कम हो जाती है यह मधुमक्खी के शरीर को आंतरिक रूप से कमज़ोर कर देते हैं जिससे उसकी आँत में संक्रमण हो जाता है।

इमिडाइक्लोप्रिड :

मधुमक्खी निकोटिन आधारित कीटनाशक विशेषतः इमिडाइक्लोप्रिड के लिए ज्यादा संवेदनशील है। यह कीटनाशक चूर्ण दीमक नियंत्रण, कीटों से बीजों को सुरक्षित रखने में भूमि में प्रयुक्त होता है। इस कीटनाशक से उपचारित बीजों से प्राप्त पौधों के परागकणों में भी कीटनाशक के अवशेष उपस्थित रहते हैं। परागकण को मधुमक्खियों एकत्र करती हैं। यह उनकी कॉलानी के लिए हानिकारक होता है। इससे उनकी कॉलानी नष्ट हो जाती है। मक्का और सूरजमुखी की फसल पर इस कीटनाशक के प्रभाव का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि यह कीटनाशक मधुमक्खी में दिशा भ्रम, उड़ान भरने की क्षमता, आपस में संचार करने की क्षमता को प्रभावित करता है। यह मधुमक्खी के छत्ते में परागकणों के साथ आता है। यह सबसे ज्यादा बिकने वाला और किसानों द्वारा सर्वाधिक पसंद किया जाने वाला कीटनाशक है। यह कीटों के स्नायु तंत्र को प्रभावित करता है। इसका प्रयोग सफेद मक्खी, थिप्स, धान के फुदके रस चूसने वाले तथा पौधों को काटने वाले कीटों, दीमक आदि के ऊपर किया जाता है। इसका प्रयोग बीजशोधन तथा फसल पर छिड़काव के रूप में किया जाता है। यह कीटनाशी धान, कपास, धान्य फसलें, मक्का, आलू, नींबू जाति, शुगरबीट तथा सब्जियों आदि के कीटों को नष्ट करने में प्रयुक्त होता है। बीजशोधन की मात्रा उत्तरी भारत में 5 ग्रा. प्रति बीज है जबकि दक्षिणी तथा मध्य भारत में 10 ग्रा. प्रति किग्रा. बीज है। यह कीटनाशक 9.6% एस.एल. (सॉल्यूबिल लिक्विड), 17.8% एस.एल., 20% एस,एल, कखा 30.5% एस.सी. (सस्पेन्शन कन्सन्ट्रेट) की फारम्यूलेश्न में मिलता है। भारत में इसके विघटन से मिलने वाले रासायन (2. नाइट्रो इमीनो - 1,3-डाईज़ासाइक्लो अल्कलीन) के पेटेण्ट को फाइल किया गया है।

रोमानिया में 2002 में डेल्टामीथेन के प्रभाव से बहुत सारी मधुमक्खियां मर गई। अमरीका में लगभग एक चौथाई (2.4 करोड़) मधुमक्खियां समाप्त हो चुकी हैं। युनाइटेड किंगडम, जर्मनी, ग्रीस, इटली, पोलैण्ड, पुर्तगाल, स्वीटजरलैण्ड आदि जहां कीटनाशकों का ज्यादा प्रयोग होता है मधुमक्खियां लगभग समाप्त हो चुकी है। ब्रिटेन में पहले 25 प्रजाति के भौंरें मिलते थे अब तीन प्रजाति समाप्त हो चुकी हैं इनके नष्ट होने का मुख्य कारण कीटनाशक के प्रयोग के साथ-साथ पारा और जीवन संवर्धित फसलें (जी.एम. फसलें) हैं।

अमरीका में मधुमक्खी पर जहर के प्रभाव को नापने की मापदण्ड भी बनाए गए हैं।

तालिका-1. कीटनाशकों की विषाक्तता का वर्गीकरण

विषाक्तता का स्तर	लीथल डोज़	विषाक्तता का मान मा.ग्रा. प्रति मधुमक्खी
सर्वाधिक	50	2 के कम (वयस्क मधुमक्खी)
मध्यम	50	2 - 10.99
कम	50	11 - 100
सुरक्षित विष अथवा अविषाक्त	50	100 से अधिक

मधुमक्खी के मरने की दर प्रति छत्ता :

मधुमक्खी के एक छत्ते में इनके मरने की दर का वर्गीकरण निम्न प्रकार है :

<100 प्रतिदिन प्राकृतिक मृत्युदर

200-400 प्रतिदिन कम मृत्युदर

500-900 प्रतिदिन मध्यम मृत्युदर

>1000 प्रतिदिन सर्वाधिक मृत्युदर

मधुमक्खियों में घर छोड़कर जाने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है - *(कॉलोनी कोलेप्स डिसऑर्डर)*। मधुमक्खी के छत्ते से अचानक मधुमक्खियां गायब हो जाती हैं जिसका कारण अभी ठीक से ज्ञात नहीं हुआ है। यह मौसम के अचानक बदलाव, भोजन की कमी, बीमारी और कीटों के प्रकोप, जी.एम. फसलें कीटनाशियों के बढ़ते प्रयोग, मोबाइल फोन से निकलने वाली रेडियेशन तथा अन्य मानव निर्मित उपकरणों के कारण हो सकता है।

मधुमक्खी के लिए जहरीले कीटनाशक :

<u>अत्यधिक विषाक्त कीटनाशक</u>

कार्बामेट्स -

व्यापारिक नाम	वैज्ञानिक नाम
बेगॉन	प्रोपोक्सर
फ्यूराडॉन	कार्बोफ्यूरॉन
लेनैट	मिथोमिल

ओरगेनोफॉसफेट्स -

एजोड्रिन	मोनोकोटोफॉस
बेटैक्स	फैनथियोन
बिड्रिन	डाइक्रोटोफॉस
साइगोन	डाइमेथोएट
साइथियोन	मेलाथियोन
डीसेरिट	फेनसलफोथियोन
डीडीवीपी	डाईक्लोरोवोस
-	मेलाथियोन
मेटोसिस्टॉक्स	आक्सीडरमिटॉन मिथाइल
पेनकप एम	पेराथियोन
सेविन	कार्बोरिल
सेविन एक्सलर	कार्बोरिल
थिमेट ई सी	फॉरेट

क्लोरीनेटेड साइक्लोडीन -

डी एम डी टी, मारलेट	मिथोक्सीक्लोर
थायोडॉन	एन्डोसल्फॉन

क्लोरोनिकोटीन्स -

-	इमिडाक्लोप्रि.

<u>मधुमक्खी के लिए अत्यधिक विषाक्त कीटनाशकों तथा अमरीका में इनके प्रयोग पर रोक :</u>

अल्ड्रिन

कार्बोफ्यूरोन (दानेदार रूप में प्रयोग वर्जित)

डाइएल्ड्रिन

हेप्टाक्लोर

लिन्डेन, बीएचसी (कैलिफोर्निया में वर्जित)

सोयाबीन पर प्रयुक्त होने वाले कीटनाशक जो मधुमक्खी के लिए विषाक्त है :

सेविन	कार्बोरिल
लॉर्सबेन4ई	क्लोरोपाइरीफॉस

डाइमेट	डाइमेथोएट
इन्डॉक्साकार्ब	-
	मेथोमिल
मेटासिड	मिथाइल पैराथियोन
माइको एन केप्सूल	मिथाइल पैराथियोन
ट्रैसर	स्पाइनोसेड

मधुमक्खी के लिए कम जहरीले रसायन :

1. अधिकतर फफूँदनाशी एवं खरपतवारनाशी
2. चेकमाइट (**क्रूमाफॉस**) : ऑर्गेनाफास्फेट कीटनाशी जिसका प्रयोग मधुमक्खी के छत्ते में *वरोआ माइट* तथा छोटे बीटल को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।
3. **एंडोसल्फॉन**
4. डाइकोफॉल
5. पैट्रोलियम ऑयल
6. अधिकतर पाइरिथोइड रसायन
7. टेमिक (**ऐलडिकार्ब**) फूल खिलने के चार सप्ताह पहले प्रयोग करे
8. **2-4डी हर्बीसाइड**

कीटनाशक के प्रयोग में सावधानियाँ :

कीटनाशक का प्रयोग करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए –

- मधुमक्खी का आवागमन यदि फसल पर दिखाई देता है तो कीटनाशी का प्रयोग करने के स्थान पर जैविक कीटनाशक का प्रयोग करें। यह फसल को सुरक्षित रखने के साथ ही मखुमक्खियों को भी नष्ट होने से बचाता है।
- छिड़काव फसल पर हमेशा शाम को करें जब मधुमक्खियां छत्ते में वापिस चली आती हैं।
- ऐसे कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए जो कम जहरीले हों तथा शीघ्र विघटित हो जाते हैं। नये आने वाले कीटनाशी जिनका विघटन कुछ ही घण्टों में हो जाता है, कम नुकसानदायक होते हैं उन रसायनों की तुलना में जो कुछ दिन से लेकर सप्ताह तक विघटित होने में लगाते हैं।
- कीटनाशक को घोल, इमलसीफाइड कन्सन्ट्रेट या दाने के रूप में प्रयोग करें क्योंकि प्रथम दोनों शीघ्र सूख जाते हैं एवं सतह पर कोई परत नहीं छोड़ते हैं। दानेदार कीटनाशी मधुमक्खी के लिए सबसे सुरक्षित रहता है। धूल (डस्ट) का प्रयोग नहीं करना चाहिए। धूल और घुलन युक्त पाउडर मधुमक्खी के पंखों और महीन रोयों में चिपक जाते हैं और छत्ते में पहुँच कर पराग के साथ जमा हो जाते हैं। जब यह पराग रानी मक्खी या बच्चों को खिला दिया जाता है तो पूरी कॉलोनी समाप्त हो जाती है।
- कीटनाशक के प्रयोग करने का तरीका भी महत्वपूर्ण होता है। अगर तेज़ हवा के समय छिड़काव किया जाता है तो हवा के द्वारा कीटनाशी आस पास के खेतों तक पहुँचकर ज्यादा क्षेत्रफल में फसल को प्रभावित करता है।
- संपर्क में आने पर कार्य करने वाले कीटनाशकों (कान्टेक्ट इन्सेक्टीसाइड) के प्रयोग से कमेरी मधुमक्खियां ज्यादा प्रभावित हैं जबकि वह कीटनाशक जो कि अवशोषित होकर एक भाग से दूसरे भाग में स्थान्तरित हो कर क्रियाशील होते हैं (सिस्टिमिक इंसेक्टीसाइड) उनके पराग और मकरंद में पाए जाने के कारण छत्ते में मक्खियों के लार्वे और रानी मक्खी के मरने की संभावना अधिक रहती है। परागकण मधुमक्खियों के शरीर के बाहर एकत्रित होते हैं जबकि मकरंद या मधु मधुमक्खियों के शरीर के अंदर एकत्र होता है। अगर मकरंद अधिक विषाक्त होगा तो कमेरी मक्खियों की मृत्यु हो जाएगी। अतः छत्तों में कीटनाशी आने का प्रमुख स्रोत परागकण है।
- सांयकाल इंडोसल्फान 35 ई.सी. का छिड़काव सुरक्षित माना जाता है।

❖❖❖

सेतु समुद्रम परियोजना : प्राकृतिक और पर्यावरणीय खतरे

- मधुर मोहन मिश्र (भौतिक शास्त्र)
एकलव्य, आदर्श आवासीय विद्यालय, बड़वानी.

ऐष सेतुर्मया बद्धः सागरे लवणार्णवे
तव हेतोर्विशालाक्षी तल सेतुः सुदुष्करेः

(वाल्मीक रायायण 123/16)

हे विशालाक्षी। खारे पानी के समुद्र में यह मेरा बंधवाया हुआ सेतु है जो नल सेतु के नाम से विख्यात है। देवि तुम्हारे लिए ही यह अत्यंत दुष्कर सेतु बनाया गया था। यद्यपि वाल्मीक रामायण की यह पंक्तियाँ सेतु के मानव निर्मित होने का संकेत देती है परन्तु यह विवाद अभी भी बना हुआ है कि सेतु मानव निर्मित है अथवा प्राकृतिक। अभी पश्चिमी समुद्र तट से आने वाला कोई भी जहाज सीधे बंगाल की खाड़ी में प्रवेश नहीं कर सकता। उसे पूरे श्रीलंका का चक्कर लगाकर आना पड़ता है। ''सेतु समुद्रम शिपिंग कैनाल प्रोजेक्ट'' पूरा होने के पश्चात् दूरी 350 नॉटिकल माइल्स (लगभग 500-550 किमी.) घट जायेगी जिससे तूतीकोरन, कैडेलोर, नागापटिनम, थोन्डी आदि बन्दरगाहों में जहाजों का आवागमन बढ़ जायेगा जिससे भारत विशेषतः तमिलनाडु की आर्थिक स्थिति में भी सुधार होगा। इस लेख में इन तथ्यों को समझने का प्रयास किया गया है कि सेतु बन्ध मार्जन की इस प्रक्रिया के क्या दुष्प्रभाव सामुद्रिक पारिस्थितिकी तंत्र (Marine ecology) , मानसून, सामरिक सुरक्षा, पर्यावरण, सामाजिक एवं आर्थिक जनजीवन, प्राकृतिक संतुलन और प्राकृतिक संपदा पर पड़ेंगे। और इस परियोजना को शुरू करते समय इन प्राकृतिक आपदा, पर्यावरण संरक्षण, प्राकृतिक संतुलन, पारिस्थितिक और जैव विविधता जैसे घटकों का किस सीमा तक ध्यान रखा गया है।

भारत सरकार की महत्वाकांक्षी सेतुसमुद्रम शिपिंग कैनाल परियोजना पाक जलडमरू मध्य और मन्नार की खाड़ी को जोड़ने का प्रयास है। अभी पश्चिमी समुद्र तट से आने वाला कोई भी जहाज सीधे बंगाल की खाड़ी में प्रवेश नहीं कर सकता। वह पूरे श्रीलंका का चक्कर लगाकर ही बंगाल की खाड़ी तक पहुँचता है। इसका कारण है श्रीलंका के पास मन्नार द्वीप और भारत के रामेश्वरम के बीच लाइमस्टोन से बने छोटे-छोटे टापुओं की श्रृंखला जिसे राम सेतु या नल सेतु कहते हैं। इसे एडम्स ब्रिज भी कहते हैं। यह लगभग 48 किमी. लंबी श्रृंखला है जो पाक जलडमरू मध्य और मन्नार की खाड़ी को विभाजित करती है। इस क्षेत्र में समुद्र काफी उथला है यहाँ कई जगह पानी मात्र 3 फीट है अतः यहाँ से जहाजों का आवागमन संभव नहीं है। इस कारण पश्चिमी समुद्र तट से आने वाले जहाज 350 नॉटिकल माइल का लंबा चक्कर लगाकर पूरे श्रीलंका को घेरते हुए बंगाल की खाड़ी में पहुँचते हैं।

परियोजना इस प्राकृतिक बाधा राम सेतु का मार्जन करने के लिए ही शुरू की गई है ताकि इस क्षेत्र में जहाजों का सुरक्षित आवागमन हो सके। इससे न केवल यात्रा की दूरी 350 नॉटिकल माइल घट जायेगी बल्कि यात्रा का समय भी लगभग 36 घंटे कम हो जायेगा। यद्यपि यह योजना नयी नहीं है सर्वप्रथम इसे अंग्रेज कमाण्डर टायलर ने सन् 1860 में प्रस्तुत किया था। स्वतंत्रता के उपरांत सन् 1955 में भारत सरकार ने डॉ.ए.रामास्वामी मुदलियार की अध्यक्षता में एक समिति इस परियोजना के आकलन के लिए गठित की। नासा (नेशनल ऐअरोनाटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन) ने 2003 में सैटेलाइट इमैजरी चित्र जारी कर इस तथ्य की पुष्टि कर दी कि मन्नार द्वीप और रामेश्वरम के बीच समुद्र में डूबा हुआ संपर्क क्षेत्र है। इस तथ्य पर अभी भी विवाद है कि यह

सेतु मानव निर्मित है या प्राकृतिक। लेकिन यह तथ्य निर्विवाद है कि इस क्षेत्र का उपयोग 15वीं शती तक मन्नार द्वीप और रामेश्वरम के बीच स्थल संयोजक के रूप में होता था। 1480 में आये एक तूफान के बाद पानी की गहराई बढ़ने से इसका उपयोग असंभव हो गया। सेतु का मानव निर्मित होना या प्राकृतिक होना इसके तोड़े जाने पर उत्पन्न होने वाले पर्यावरणीय और प्राकृतिक दुष्प्रभावों पर कोई प्रभाव नहीं डालता।

प्राकृतिक आपदाओं के खतरे :

पूर्वी तट समुद्री तूफानों एवं सूनामी के खतरों से सर्वाधिक प्रभावित क्षेत्र है। भारतीय मौसम विभाग के रिकॉर्ड बताते हैं कि 1891 से 2001 तक रिकॉर्ड किये गये 452 तूफानों में 256 पूर्वी तट पर आये थे। सेतुसमुद्रम योजना के एक हिस्से के रूप में 3-4 फीट की एक दीवाल तूतीकोरन पोर्ट की सुरक्षा के लिए बनाया जाना प्रस्तावित है। छः सूनामी झेल चुका पूर्वी तट क्या इस तरह के उपायों से सुरक्षित किया जा सकता है?

भारतीय मौसम विभाग ने पाल्क स्ट्रेट क्षेत्र को अति संवेदनशील माना है। समुद्री तूफान से चैन्नई को हुये नुकसान का पुराना रिकॉर्ड 1627 का मिलता है। डॉक्टर फॉर सेव इन्वायरमेंट के.आर.रमेश के अनुसार "मन्नार की खाड़ी में ज्वालामुखी की संभावना सबसे ज्यादा है। अंतर्राष्ट्रीय हिंदी महासागर खोज और भूगर्भशास्त्री जी.आर.के. मूर्ती 1994 के अध्ययन के अनुसार "चुंबकीय और गुरूत्वीय आँकड़े बतलाते हैं कि 12 से 20 किमी. चौड़ी दरार समुद्र तल में संभावित है जो रिक्टर स्केल पर 7 से कम तीव्रता के भूकंप का परिणाम हो सकता है।"

मन्नार की खाड़ी में बड़ी टेक्टॉनिक प्लेटों की उपस्थिति के प्रमाण हैं। ऐसे क्षेत्र जहाँ टेक्टॉनिक सक्रियता के प्रमाण मिलते हों वहाँ तल मार्जन करना सर्वथा अवैज्ञानिक और किसी प्राकृतिक आपदा को निमंत्रण देना है। 1973 में पाक खाड़ी से उठे समुद्री तूफान का वही रास्ता है जो इस परियोजना में और साफ किया जा रहा है। वर्तमान में सूनामी लहरें और समुद्री तूफान सेतु की प्राकृतिक बाधा के कारण तटवर्ती क्षेत्रों में अधिक नुकसान नहीं पहुँचा पाती यदि कंप्यूटर प्रतिरूपों को देखें तो सेतु की अनुपस्थिति तटवर्ती क्षेत्रों को जलमग्न कर देगी। सूनामी केवल भूकंप के कारण ही उत्पन्न नहीं होती बल्कि समुद्र के अन्दर चट्टानों के सरकने और गिरने का परिणाम भी होती है। संभव है सेतु मार्जन इस तरह की प्राकृतिक आपदाओं के जन्म का कारण हो।

भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण के निदेशक डॉ. डी.एन. शेषागिरी के अनुसार पनामा नहर के बनने में भी बहुत सी भूमि खिसकी। अर्थात सदियों से बनी प्राकृतिक संरचना को तोड़ा जाना साइक्लोन, समुद्री तूफान और सूनामी को निमंत्रण देने जैसा होगा। और इस परियोजना में व्यय राशि के छोटे-से हिस्से का उपयोग सूनामी, समुद्री तूफानों, साइक्लोन के पूर्वानुमान लगाने वाले केंद्रों को विकसित करने में व्यय करना अधिक लाभकारी होगा।

पर्यावरणीय खतरे :

इन्वायरमेंटल फाउन्डेशन लिमिटेड श्रीलंका के प्रवक्ता श्री विनोद मोनासिंघे के अनुसार सेतु का तोड़ा जाना मन्नार की खाड़ी और पल्क स्ट्रेट की सामुद्रिक परिस्थितिकी असंतुलन का कारण बनेगा। तटीय क्षेत्रों में भूमि कटाव तेजी से बढ़ेगा। यद्यपि पर्यावरणीय खतरों का अकलन राष्ट्रीय पर्यावरण इंजीनियरी संस्थान नागपुर ने परियोजना को पर्यावरण सम्मत बताता है परन्तु श्रीलंका के राष्ट्रीय जलसंपदा अनुसंधान एवं विकास संगठन ने हिंद महासागर और बंगाल की खाड़ी के बीच अधिक जलप्रवाह के कारण सामुद्रिक जैवीय असंतुलन उत्पन्न हो जाने की संभावना व्यक्त की है। उदाहरण के लिए जैली फिश बंगाल की खाड़ी से लुप्त हो सकती है, स्पर्मव्हेल और डूगोंग का जीवन संकट में पड़ सकता है।

तल मार्जन से ही विषैले तत्त्व समुद्र तल से सतह पर आ जायेंगे जो बड़ी संख्या में समुद्री वनस्पति एवं समुद्री जीव-जन्तुओं के विनाश का कारण बनेंगे। 750 मछली की प्रजातियाँ संकटग्रस्त हो जायेंगी। मन्नार की खाड़ी का यह क्षेत्र अपनी अपूर्व जैव विविधता के कारण विश्व धरोहर माना जा सकता है।

पल्क बे और मन्नार की खाड़ी की पारिस्थितिकी जहाजों के आवागमन के अनुकूलित करने में सक्षम नहीं है। जहाजों के प्रदूषण और तेल रिसाव से समुद्री जल की भौतिक और रासायनिक स्थिति तेजी से बदलेगी जो जैव संपदा पर विपरीत प्रभाव डालेगी। तापक्रम, श्यानता, पीएच. (pH) मान, पंकिलता के साथ-साथ खनिज लावणों का सान्द्रण परिवर्तन जलीय पशु-पक्षियों के लिए गंभीर जीवन संकट पैदा कर देगा। जहाजों का आवागमन न केवल समुद्र वरन् तटीय क्षेत्रों में भी प्रदूषण उत्पन्न कर देगा। कुछ रेतीले टीलों की उपस्थिति भी इस क्षेत्र में है। पर्यावरणीय प्रभाव आकलन रिपोर्ट के अनुसार छोटे-छोटे ऐसे द्वीप डूब जायेंगे। ऐसे बहुत से द्वीपों को समुद्री सीमा के रूप में भी चिन्हित किया गया है।

सामरिक एवं परमाण्विक खतरे :

इस क्षेत्र में जहाजों की स्वतंत्र आवाजाही से कलप्पकम नाभिकीय रिएक्टर की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है। परमाण्विक अस्त्रों से सुसज्जित जहाज एवं तेल टेंकरों पर आतंकवादी और आत्मघाती हमले की संभावना बढ़ जायेगी। अभी भी यह समुद्री क्षेत्र कुछ आतंकवादी संगठनों की गतिविधियों का शिकार होता रहता है।

परमाण्विक प्रदूषण सूनामी से अधिक खतरनाक होगा क्योंकि यह पारिस्थितिकी तंत्र और मनष्यों पर अधिक समय तक प्रभाव डालेगा। राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से इस परियोजना का व्यापक आकलन किये जाने की आवश्यकता है ताकि हिंद महासागर का क्षेत्र वास्तविक हिंद महासागर हो सके।

सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और धार्मिक खतरे :

समुद्र तटीय अर्थव्यवस्था समुद्री जीव-जन्तुओं विशेषकर मत्स्याखेट, मोती-मूँगा उद्योग पर निर्भर है। पारिस्थितिकी असंतुलन अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव डालेंगे। मछलियों की प्रजातियां नष्ट होने से तटवर्ती मछुआरे रोजगार विहीन हो जायेंगे। मन्नार का प्रसिद्ध मोती उद्योग संकटग्रस्त हो जायेगा। मूँगे की 117 प्रजातियों की अमूल्य जैविक संपदा नष्ट हो जायेगी। इन उद्योगों पर आश्रित हजारों परिवार बेरोजगार हो जायेंगे। जलप्रवाह बढ़ने से तटवर्ती क्षेत्र डूब जायेंगे। समुद्री जल रिसाव पेयजल एवं कृषि के लिए संचाई जल को भी प्रदूषित कर सकता है जिससे तटवर्ती क्षेत्रों की कृषि पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा। एक अच्छे पडोसी राष्ट्र के रूप में श्रीलंका के हितों की अनदेखी करना नैतिक दृष्टि से अनुचित होगा। सर्वमान्य अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुसार "कोई राष्ट्र ऐसी योजना परियोजना संचालित नहीं करेगा जो वृहत पर्यावरणीय एवं स्वास्थगत खतरों से पूरी तरह सुरक्षित न हो।"

इन सब वैज्ञानिक तथ्यों के प्रकाश में सेतुसमुद्रम परियोजना को देखा जाना आवश्यक है। धार्मिक नगरी रामेश्वरम के डूब जाने की आशंका के साथ ही राम सेतु के करोड़ों लोगों की धार्मिक आस्था जुड़ी हुयी है।

सारांश में :

1) राम सेतु का तोड़ा जाना सूनामी, समुद्री तूफानों और साइक्लोन की उत्पत्ति का कारण बन सकता है।

2) सामुद्रिक पारिस्थितिकी असंतुलन, जैव विविधता, मानसून, समुद्री जीव प्रजातियों, वनस्पतियों, दुर्लभ मूँगे की चट्टानों पर विपरीत प्रभाव डालेगा।

3) स्थानीय निवासियों विशेषतः मछुआरों को जीविका का संकट उत्पन्न हो जायेगा। मूँगा-मोती उद्योग समाप्त हो सकता है।

4) तटीय क्षेत्रों में समुद्री जल क्षेत्र बढ़ने से भूमि जल रिसाव के कारण कृषि एवं पेयजल पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

5) पड़ोसी राष्ट्रों से राजनयिक संबंधों पर असर पड़ सकता है।

6) प्राकृतिक धरोहर नष्ट हो जायेगी।

❖❖❖

टिप्पणियां

1. सुपर एलॉय के कुछ आवश्यक पहलू :

आज से 40-50 वर्ष पूर्व केवल धातु के कुछ एलॉय जैसे स्टील एलॉय, कॉपर एलॉय या अल्यूमिनियम एलॉय हुआ करते थे, ज्यों–ज्यों अनुसंधान एवं विकास कार्य हुए त्यों-त्यों धातु के कुछ ऐसे एलॉय बनाए गये जिनमें उच्च ताप सहने की क्षमता, उच्च संक्षारण प्रतिरोधकता, विषम यांत्रिक प्रतिबल, उच्च विषर्पण की दर (Creep rate) तथा बाध्य सतहों को दृढ़ता प्रदान के गुण विद्यमान हैं, उन्हें सामान्यतः सुपर एलॉय का नाम दिया गया। यह एलॉय इन सभी गुणों को विभिन्न गति, कंपन एवं तापक्रम (300°C) पर भी इष्टतम गुण बनाये रखते हैं। विभिन्न प्रकार के गैस टरबाइन इंजन, जेट विमान, प्रोपेलेन्ट, प्रक्षेपास्त्र आदि को अधिक शक्तिशाली एवं गुणवत्ता नियंत्रण से मुक्त कार्यकुशल बनाने हेतु सुपर एलॉय मिश्रधातु का तेजी से विकास एवं अनुसंधान का हो रहा है। इससे बने यंत्र 400-800°C तापक्रम पर भी अपनी दक्षता बनाये रखते हैं। धातुओं में सुपर एलॉय क्रमशः आयरन, निकेल एवं कोबाल्ट से बने एलॉय हैं। इनसे बने सुपर एलॉय के यंत्र उच्च दबाब (20,000 psi) पर भी सौ घंटे तक अपनी क्षमता (नियंत्रण) बनाये रखते हैं। अर्थात् दबाब को सह सकता है एवं ये एलॉय मुख्यतः उच्च पुनःमणिभीकरण ताप (Recrystallization) के होते हैं जिसे तापोपचार की आवश्यकता नहीं होती है। यानि जब सुपर एलॉय उच्च तापक्रम को सह लेता है तब उसकी आंतरिक संरचना बिल्कुल वैसे ही रहती है जैसे पहले थी। अतः ये उच्च संक्षारण प्रतिरोधक होते हैं क्योंकि जब आंतिरक संरचना में परिवर्तन (उच्च ताप पर) होता ही नहीं तो संक्षारण होने का सवाल ही पैदा नहीं होता है। निकेल एवं कोबाल्ट तत्त्वों से निर्मित एलॉय की क्षमता उच्च तापमान पर दूसरे एलॉय की अपेक्षा अधिक एवं कार्यक्षमता उसके गलनांक के निकटतम होती है। इसलिए गैस टरबाइन में निकेल के एलॉय को कुल भार का 45% के लगभग उपयोग किया जाता है ताकि टरबाइन के ब्लेड को विसंगति (Deffect) से बचाया जा सके। जहाँ तीव्र गति एवं उच्च तापमान रहता है। सुपर एलॉय का उपयोग लड़ाकू विमानों के इंजनों में किया जाता है। जहाँ प्रणोद और भार के अनुपात को नियंत्रित रखना पड़ता है इसी आधार पर इंजन के निर्माण में स्ट्रक्चरल पदार्थ एवं सुपर एलॉय के साथ तालमेल बिठाया जाता है। इंजन के अभिकल्पन में सुपर एलॉय के अभिकल्पन के साथ इस बात पर अधिक ध्यान दिया जाता है कि इंजन बेहतर, उच्च ताप सहने योग्य, उच्च संक्षारण प्रतिरोधक, उच्च विषर्पण की दर ठोसपन और परिष्कृत संरचना बरकरार रखने की क्षमता हो।

सुपर एलॉय बनाने हेतु प्राथमिक गलन और पुनर्गलन प्रकियाओं को सुनिश्चित भट्टी में आवश्यक ताप नियंत्रण में बनाया जाता है। गलाने के क्रम में शुद्धता के साथ-साथ सूक्ष्म त्रुटि पर भी नियंत्रण रखा जाता है।

निकेल धातु सुपर एलॉय में 15-20% क्रोमियम (Cr) रहता है। क्रोमियम को अधिक इसलिए रखते हैं ताकि उच्च संक्षारण प्रतिरोधकता एवं उच्च ताप सहने की क्षमता बनी रहे। इसे तापोपचार के समय मिला लिया जाता है। जो मणिभीकरण ताप के नीचे होता है। तापोपचार करने के समय उसके गलनांक का एक तिहाई भाग से 1150°C तक 200°C प्रति घंटे की दर से गर्म करते हैं। 5-6 घंटे के बाद जब ताप 1150°C पर पहुँच जाता है तब उसी ताप पर आधे घंटे तक भट्टी में रवे को परिष्कृत करने हेतु रखते हैं। इस वक्त रवे (grain) में जो दबाव या तनाव बना रहता है वो उच्च ताप पर अलग हो जाता है तथा नये रवे बनने शुरू हो जाते हैं। पुराने रवे जो अनियंत्रित रहते हैं उस ताप पर नाभिकरण के कारण नियंत्रित हो जाते हैं। फिर से धातु की एक नयी संरचना प्राप्त होती है जो अपने मूल अवस्था में अपने भौतिक एवं रसायनिक गुण को बरकरार रखती है उसके बाद भट्टी से धातु को बाहर निकाला जाता है एवं तापनुशीलन (एनीलिंग), पानी या तेल में डुबाकर तुरंत ठंडा किया जाता है। इस क्रम में सुपर एलॉय में कार्बाइड बनने की संभावना खत्म हो जाती है एवं धातु में ताप से विस्तार भी कम होता है यदि उसे खुले वातावरण में छोड़ दिया जाता है तो 450 - 900°C तापक्रम पर क्रोमियम कार्बाइड बनने की संभावना प्रबल हो जाती है जो संक्षारण पैदा करता है। खासकर अन्तर अधिक संक्षारण (IGC) जो रवे के सीमा पर होता है। वहाँ (Cr_3C_6) क्रोमियम कार्बाइड के बनने से क्रोमियम का प्रतिशत सुपर एलॉय में 18% से घट जाता है। जिससे किसी भी विद्युत रसायनिक क्रिया (धातु में एसिड का प्रवेश) से उस धातु का ऊपरी सतह पर क्रोमियम की परत हट जाती है। और इससे क्रोमियम एवं निकेल का संयोग न होने से धातु अपनी आण्विक संरचना ऑस्टेनाइट से फेराइट या मार्टेनसाइट बदल जाती है। अतः सुपर एलॉय बनाने के क्रम से तापोपचार करने के बाद तक धातु के नमूने का रसायनिक

एवं भौतिक परीक्षण कर धातु के आण्विक संरचना की जाँच कर यह पता कर लेते हैं कि धातु का भौतिक एवं यांत्रिक गुण सुपर एलॉय के समरूप है या नहीं।

यह अभी धातु विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान का विषय है। अभी कोबाल्ट, निकेल सुपर एलॉय के अलावा नियोबियम धातु सुपर एलॉय, टाइटेनियम एलॉय, अल्फा एवं बीटा टाइटेनियम सुपर एलॉय, टाइटेनियम-अल्यूमिनियम-X सुपर एलॉय (जहाँ X- ट्रांजिशन तत्त्व है), जिरकोनियम - अल्यूमिनियम सुपर एलॉय जिरकोनियम - रुदीनियम सुपर एलॉय आदि प्रमुख हैं। इनमें उच्च ताप प्रतिरोधकता, उच्च संक्षारण प्रतिरोधकता, उच्च विषर्पण की दर, उच्च दाब सहनशीलता, उच्च घर्षण गुणांक आदि के गुण रहते हैं जो यंत्रों में उच्च गुणवत्ता नियंत्रण एवं वेल्डनीय गुण प्रदान करते हैं। जहां वेल्डन प्रकम (गर्म-कार्य) द्वारा धातु की आंतरिक संरचना गड़बड़ा जाती है वहाँ सुपर एलॉय काफी महत्त्वपूर्ण है। बिना वेल्डन प्रकम के यंत्र को उस आकार का बनाया भी नहीं जाता है। अतः यंत्रों हेतु सुपर एलॉय धातु काफी मायने रखता है जहाँ संक्षारण, घर्षण, ताप, गर्मी आदि का ध्यान रखना पड़ता है।

- संजय गोस्वामी
एन आर जी, बी.ए.आर.सी.,
मुंबई-400 085

2. बढ़ता तापमान और दुष्प्रभाव

जनसंख्या विस्फोट, वाहनों की बढ़ती संख्या, जंगलों की कटाई, कंक्रीट के जंगलों का विस्तार तथा सुख-सुविधा के नाम पर ऐसे पदार्थों का उपयोग जो हानिकारक है, से पर्यावरण निरंतर प्रदूषित हो रहा है। प्रदूषित पर्यावरण जीवन के लिए अहितकर है। प्रदूषित पर्यावरण के कारण मौसम में भी परिवर्तन हो रहे हैं। सूखा, बाढ़ इसके परिणाम हैं। वर्षा कहीं कम, कहीं ज्यादा, सर्दी कम पड़ रही है, गर्मी का समय काल बढ़ गया है। तापमान भी बढ़ गया है। ये सब विनाश की ओर इंगित करते हैं।

पृथ्वी के तापमान में वृद्धि को ग्लोबल वार्मिंग कहते हैं। ग्लोबल वार्मिंग के लिए मानव स्वयं उत्तरदायी है। कल-कारखानों से अनियंत्रित मात्रा में धुआं निकल रहा है। धुएं में दूषित गैसें होती हैं।

ग्लोबल वार्मिंग की सबसे बड़ी कारक ग्रीन हाउस गैसों की बढ़ती मात्रा है। ग्रीन हाउस काँच की छत का विशाल हॉल होता है। इससे कम तापमान पर अच्छी पैदावार ले सकते हैं। ग्रीन हाउस के काँच के पैनल से सूर्य की गर्मी बाहर नहीं जाती। जिस प्रकार ग्रीन हाउस गर्मी बढ़ानेवाले काँच के पैनलों से ढ़का होता है, उसी प्रकार पृथ्वी ऊपर वायुमण्डल में उपस्थित गैसें सूर्य की गर्मी को रोककर पृथ्वी पर जीवन के अनुकूल तापमान बनाए रखती है, यह ग्रीन हाउस प्रभाव है। ये गैसें कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, जल वाष्प है। पृथ्वी पर जीवन अनुकूल तापमान बनाए रखने की प्राकृतिक अवस्था है। इन गैसों को ग्रीन हाउस गैसें कहते हैं।

आज वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा बहुत बढ़ गई है, जिससे पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है। तापमान वृद्धि से मौसम में भी परिवर्तन हो रहे हैं। यह सब जीवन के लिए घातक है।

वाहनों की बढ़ती संख्या, रेफ्रिजरेटरों, ए.सी. के उपयोग, रासायनिक उत्पादों, धुआं उगलती फैक्ट्रियों ने वायुमण्डल को दूषित कर गर्म करना शुरू कर दिया है। परिणाम यह निकला कि दूषित गैसों की मात्रा का नियंत्रण कम हो जाता है।

ग्रीन हाउस गैसों की बढ़ती मात्रा के लिए विकसित राष्ट्र अधिक उत्तरदायी है। ये अपने यहाँ विकास के नाम पर ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा बढ़ा रहे हैं। आर्थिक विकास की यात्रा में भारत व चीन भी पीछे नहीं हैं। इससे विश्व की ऊर्जा आपूर्ति पर दुष्प्रभाव होगा। यह चेतावनी अन्तर्राष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी (आई.ई.ए.) ने दी है। 2015 तक विश्व में सर्वाधिक कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन करने वाला भारत तीसरा राष्ट्र होगा। 2030 तक भारत और चीन विश्व की प्राथमिक ऊर्जा मांग के 45% हिस्से का प्रतिनिधित्व करेंगे। पेरिस स्थित एजेंसी विश्व ऊर्जा आउटलुक ने कहा कि ऊर्जा सुरक्षा को लेकर उत्पन्न खतरे का मुकाबला भारत, चीन कैसे करते हैं, इसका पूरे विश्व पर प्रभाव पड़ेगा। चीन इस वर्ष कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन में अमरीका से आगे निकल जायेगा।

संयुक्त राष्ट्र की जलवायु एवं मौसम विज्ञान एजेंसियों के प्रमुखों ने चेतावनी दी है कि ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन के कारण मछली पालन और पर्यटन उद्योग को भारी नुकसान उठाना पड़ सकता है। लाखों लोग बेरोजगार हो जायेंगे।

गर्मियों में अन्टार्कटिका ने बढ़े हुए तापमान ने खतरे की सूचना दी है। कनाडा के रिसर्च स्टेशन ने जुलाई में उत्तरी ध्रुव का तापमान बीस डिग्री सेल्सियस से ज्यादा रिकार्ड किया। यह सामान्य तापमान से 15 डिग्री अधिक है। सितंबर

में भी यहां सामान्य से ज्यादा गर्मी पायी गयी। ग्लोशियर, ग्लोबल वार्मिंग के कारण पिघल रहे हैं। अमरीका के सबसे ठण्डे स्थानों में से एक येलविले आइसलैंड पर तापमान 22 डिग्री से. पाया गया। भूगोल के प्रोफेसर स्काट लैयूरेक्स के अनुसार जुलाई में दिन में तापमान 10 डिग्री से 15 डिग्री तक पहुँच जाता है, कभी कभी 22 डिग्री भी हो जाता है। यू.एस. स्नो एंड आइस डेटा सेन्टर के वाल्ट मोर के अनुसार अन्टार्कटिका के दूसरे हिस्सों का तापमान सामान्य से ज्यादा रहा है। नासा की रिपोर्ट के अनुसार अन्टार्कटिका तथा ग्रीन लैण्ड की बर्फ काफी मात्रा में पिघल गई, जिससे समुद्र जल स्तर बढ़ने से न्यूयार्क, मुंबई, चैन्नई, कोलकाता व यवन को खतरा है।

उत्तरी साइबेरिया में भी तापमान सामान्य से पांच डिग्री ज्यादा रिकार्ड किया गया। अन्टार्कटिका के ऊपर आसमान साफ होने से सूर्य की तेज रोशनी के कारण ग्लेशियर के पिघलने की दर तेज हो गई। इस वर्ष 42.8 लाख वर्ग किमी. ग्लैशियर पिघल गए।

ग्लोबल वार्मिंग के कारण हिमालियन और काराकोरम ग्लेशियर पिघल रहे हैं। पश्चिमी और पूर्वी हिमालियन में भिन्नता पायी गयी है। पश्चिमी हिमालय में मानसून वर्षा बर्फ पिघलने की मात्रा से कम होती है। अतः बर्फ का पिघलना नदियों में पानी की मात्रा को प्रभावित करता है। पूर्वी हिमालय में वर्षा अधिक होती है। यह नदियों के जलप्रवाह को प्रभावित करती हैं। सामान्यतः जमी बर्फ और बर्फ पिघलने में सामन्जस्य रहता है। परंतु तापमान बढ़ने से ग्लेशियर पिघल रहे हैं। अध्ययन से पता चला है कि गंगोत्री ग्लेशियर एक किमी. प्रतिवर्ष की दर से पिघल रहा है। बर्फ का पिघलना ग्रीन हाउस गैसों की अत्यधिक मात्रा में उत्सर्जन उत्तरदायी है। ग्लेशियरों का पिघलना ईको सिस्टम तथा पर्यावरण संतुलन को प्रभावित कर रहा है।

हिमालय ग्लेशियर एशिया की सात प्रमुख नदियों को जल देता है। ये नदियाँ गंगा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, सलवीन, मिकोरा यंगद्ज और हुयागदू है। 10% बर्फ पिघलने से 4% जल की बढ़ोत्तरी हो रही है। ऊपरी सिन्धु नदी में 14% की बढ़ोत्तरी पायी गयी, अनुमान है कि 10 वर्षों में 90% हो जायेगी। इससे जल प्रवाह 30% कम हो जायेगा। गंगा नदी में बहाव उत्तरकाशी में 20 से 33% है जो आगे कम हो जायेगा। ब्रह्मपुत्र में भी जलबहाव में कमी आयी है। बर्फ पिघलने से दक्षिण पूर्व एशिया में जल की कमी हो जायेगी। लाहोलस्पीवि में छोटा सिंदरी ग्लेशियर भी पिघल रहा है। आइसवर्ग की चोटी भी प्रभावित हो रही है। हिमालय ग्लैशियर पिघलने से एशिया के जनजीवन पर प्रभाव पड़ेगा। पहले बाढ़ फिर सूखा पड़ने की स्थिति होगी।

ग्लेशियरों के पिघलने और पहाड़ों के गर्म होने का मुख्य कारण ग्रीन हाउस गैसो की मात्रा का अत्यधिक उत्सर्जन और धूल, काला कार्बन, एरोसोल के अवशोषण है।

कोलोरैडो स्थित नेशनल सेंटर फॉर एटमॉस्फिरिक रिसर्च के गाँव ब्रासीयर कहते हैं कि दक्षिण-पश्चिमी अमरीका, मेक्सिको, ऑस्ट्रेलिया भू-मध्य सागरीय क्षेत्र, इन्डोनेशिया समेत देशों में भी जलवायु में परिवर्तन, तापमान में वृद्धि पायी गयी है। यदि तापमान में वृद्धि ऐसी ही होती रहती है तो भविष्य में दावाग्नि की घटनाओं में प्रतिदिन वृद्धि होगी।

साइंस जर्नल की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1987 की तुलना में पश्चिमी देशों के विद्यमान तापमान में 1.5% की बढ़ोत्तरी पायी गई है। वैज्ञानिक, ग्लोबल वार्मिंग के परिणाम स्वरूप दावाग्नि की घटनाओं में वृद्धि मानते हैं। दावाग्नि के परिणाम स्वरूप कार्बन डाईऑक्साइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड व अन्य रासायनिक पदार्थ उत्सर्जित होते हैं। ये प्रदूषक तत्त्व अग्निशमन कर्मियों के फेफड़ों को हानि पहुँचात हैं।

जंगल की आग बुझाने के लिए कुछ खास रसायनों एवं गैसफ्लेम रिटार्डेंट का प्रयोग किया जाता है। अग्निरोधक रसायनों में अल्यूमीनियम पॉलीफोस्फेट, अमोनियम फॉस्फेट, डायअमोनियम सल्फेट का प्रयोग करते हैं। जंगल में लगी आग पर नियंत्रण करने के लिए हेलिकॉप्टर से फ्लेम रिटार्डेंट को डालते हैं। इस बीच अग्निशामकों को आग बुझाने का अवसर मिल जाता है।

दावाग्नि से सबसे ज्यादा प्रभावित क्षेत्र अफ्रीका का 'सब सहारा' क्षेत्र है। प्रतिवर्ष 17 करोड़ हेक्टेयर भूमि दावाग्नि की चपेट में आती है। वर्ष 2006 में पुर्तगाल में 58 हजार हेक्टेयर भूमि दावाग्नि की चपेट में आयी। इस वर्ष जार्जिया में दावाग्नि की चपेट में 4 लाख 68 हजार 938 एकड़ भूमि जलकर राख हुई। फ्लोरिडा में 1 लाख 24 हजार 584 एकड़ भूमि दावाग्नि से प्रभावित हुयी।

जनवरी 2007 में दक्षिण ऑस्ट्रेलिया के आयर प्रायद्वीप पर दावाग्नि में 1 लाख 45 हजार हेक्टेयर भूमि जलकर राख हुई। वर्ष 2007 में ग्रीस के विभिन्न क्षेत्रों में लगी आग में 1 लाख 77 हजार 265 हेक्टेयर भूमि जलकर राख हुई। अमरीका के ऊटा में लगी आग में 3 लाख 63 हजार 052 हेक्टेयर भूमि प्रभावित हुयी। आग लगने से तापमान में वृद्धि होती है। आग लगने के बाद पर्यावरण

प्रदूषित हो जाता है। कैलिफोर्निया राज्य के जंगलों में लगी आग भी भीषण है, तबाही मचा रखी है।

इन्टरगवर्नमेंटल पैनल आफ क्लाइमेट चेंज के अनुसार 21वीं सदी के अंत तक वैश्विक तापमान 1.4 डिग्री से 5.8 डिग्री तक बढ़ने की संभावना है। इस बढ़े तापमान के कारण जंगलों में आग की घटनाएं बढ़ जायेगी।

मानव निर्मित गतिविधियों ने तापमान बढ़ोत्तरी में पूर्ण सहयोग किया है। परन्तु प्रकृति ने इस दुष्प्रभाव से बचने का प्रयास किया है। हिमालय में 16 वर्ष बाद ग्लेशियरों को संजीवनी मिली है। कुल्लू और लाहौल स्फीति जिले की ऊँची पहाड़ियों में 10 से 15 फुट तक बर्फ गिरी है। यह हिमपात ग्लेशियरों को सिकुड़ने से रोक देगा। इससे पर्यावरण संतुलन में सहायता मिलेगी।

पर्यावरण वैज्ञानिकों के अनुसार ग्लोबल वार्मिंग के कारण ग्लेशियर 17 मीटर से 21 मीटर तक सिकुड़ रहे हैं। समुद्र के जलस्तर में उतार चढ़ाव मिला है। मौसमचक्र में आए बदलाव से पर्यावरण संतुलन को खतरा उत्पन्न हुआ है। कुल्लू के जी.वी. पंत हिमालियन पर्यावरण संस्थान के वैज्ञानिक डॉ. जे. सी. कुनियाल के अनुसार फरवरी माह में हुआ हिमपात दिसंबर, जनवरी माह के हिमपात की तुलना में कम स्थिर होता है। लेकिन ग्लेशियरों को नयी संजीवनी मिली है।

पर्यावरणविद श्री किशनलाल के अनुसार पर्यावरण संतुलन बनाये रखने में प्रकृति ने स्वयं कार्य किया है। ऊंची पहाड़ियों पर जमकर बर्फबारी हुई है। श्रीखंड महादेव, हंसकुंड, बशलयू में 15 से 17 फुट बर्फ गिरी है। रोहतांग दर्रा, कांगला, कुगती, गंगस्टांग की चोटियों पर जमकर हिमपात हुआ है। वर्ष 2007 के दिसंबर के शुरू में श्रीनगर के गुलमर्ग, मनाली, नैनीताल, शिमला में दस साल के बाद जमकर बर्फ पड़ी है। यह ग्लेशियरों के लिए सुरक्षा दीवार का काम करेंगी, जिससे ग्लेशियरों का सिकुड़ना कुछ सीमा तक कम हो जायेगा।

जर्मनी में काइल स्थित लाइबानित्ज इंस्टीट्यूट आफ टेरीन साइंस के जीव वैज्ञानिक उल्फ रिबेसेल के अनुसार छोटे प्लवक जीव प्लैंकटन 39% अधिक कार्बन डाईऑक्साइड का अवशोषण कर बढ़ते तापमान को कम करने में सहायक है। जैव ईंधन के उपयोग से कार्बन डाईऑक्साईड का उत्पादन कम होगा जिससे तापमान नहीं बढ़ेगा।

यूनिवर्सिटी ऑफ कैल्गरी के बायलॉजी के प्रोफेसर पीटर डनफील्ड और सहयोगियों ने मीथेन को खाने वाले बैक्टीरिया की खोज की है। यह बैक्टीरिया न्यूजीलैंड के रोटोरा शहर के निकट जियोथर्मल फील्ड में पाया गया। यह बैक्टीरिया खदानों, औद्योगिक कचरा, जियो थर्मल पावर प्लांट से निकलने वाली मीथेन गैस को समाप्त कर देता है।

मिथेनोट्रॉफिक नामक बैक्टीरिया मीथेन को खाद्य के रूप में ग्रहण कर पाचन क्रिया के द्वारा कार्बन डाईऑक्साइड में परिवर्तित कर देता है। मीथेन गैस, कार्बन डाईऑक्साइड की तुलना में अधिक ग्रीन हाउस प्रभाव दर्शाती है। अतः अधिक हानिकारक है।

मिथेनोट्राफिक बैक्टीरिया से मीथेन गैस की मात्रा कम होगी, तो कम ग्रीन हाउस प्रभाव होगा और कम ही तापमान में वृद्धि होगी। अतः बढ़ते तापमान के दुष्प्रभाव भी कम होंगे।

अभी हाल में इन्डोनेशिया में जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्गत राष्ट्रों की बैठक हुई, इसमें विकसित राष्ट्रों को बढ़ते तापमान के लिए उत्तरदायी ठहराया गया तथा समयबद्ध काल में कार्बन डाईऑक्साइड व मीथेन गैस के उत्सर्जन पर रोक लगाने को समझौता हुआ। यदि विकसित राष्ट्र विशेषकर अमरीका दूषित गैसों के उत्सर्जन पर रोक लगाता है तो पर्यावरण में संतुलन बढ़ेगा, अन्यथा विकास के नाम पर दूषित गैसो का उत्सर्जन कम नहीं होगा ऐसा विकास किस काम का जो विनाश करता हो। जीवन की रंगीनियाँ तभी संभव है जब पर्यावरण प्रदूषित न हो और हम स्वस्थ रहें।

- डॉ. ए. के. चतुर्वेदी
26, कावेरी एन्कलेव फेज-II, निकट स्वर्ण जयन्ती नगर, रामघाट रोड, अलीगढ़ (उ.प्र.)-202 001

3. विकसित हो रहा है संज्ञानात्मक विज्ञान

समस्त जीवित प्राणी बाहरी वातावरण से प्राप्त उद्दीपनों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। इनके कुछ व्यवहार वातावरण के प्रति जागरूकता प्रदर्शित करते हैं। जागरूकता के अंतर्गत प्रत्यक्षीकरण, अर्थ, बोध, प्रत्यभिज्ञा, स्मरण, अवधान, वर्गीकरण, नियोजन, समस्या समाधान एवम् निर्णयन आदि संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया जा सकता है।

संज्ञान को मनोविज्ञान में सूचना प्रक्रमण की प्रक्रिया माना जाता है। संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक चिन्तन को सूचना प्रक्रमण का प्रकार्य मानते हैं। संज्ञान का तात्पर्य ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया से हैं। इसमें प्रत्यक्षीकरण, अवधान, स्मरण, चिन्तन, अधिगम, सम्प्रत्ययीकरण आदि मानसिक प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया जा सकता है। संज्ञान में अनेक मानसिक प्रक्रियाएं सन्निहित होती हैं जिनमें सूचनाओं का अर्जन, संग्रहण प्रणाली में उनकी स्थापना, उनकी पुनर्प्राप्ति अथवा उनके उपयोग की आवश्यकता होती हैं। अनेक संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं एक साथ घटित होती हैं अथवा अनेक घटित होने में अल्पतम समय लगता है।

मन की कार्यप्रणाली का अध्ययन संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में किया जाता है। इसमें कृत्रिम बुद्धि के बारे में अनुसंधान किया जाता है जो कंप्यूटर विज्ञान की एक शाखा मानी जाती है। इसमें कंप्यूटर को विभिन्न प्रकार के मानसिक प्रकार्यों यथा समस्या समाँधान, तर्कण, निर्णयन आदि के लिए निर्देश दिये जाते हैं। कुछ मनोविज्ञानियों के अनुसार संज्ञान का वैज्ञानिक अध्ययन ही संज्ञानात्मक मनोविज्ञान कहा जाता है। इसका उद्देश्य ऐसे प्रयोगों को सम्पन्न करना और सिद्धांतों को विकसित करना है जो मानसिक प्रक्रियाओं के संगठन एवं प्रकार्य की व्याख्या कर सके।

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, कंप्यूटर विज्ञान, दर्शनशास्त्र, भाषाविज्ञान, तंत्रिकाविज्ञान, समाजशास्त्र और मानवशास्त्र के अनुसंधानों से एक बहुविषयी क्षेत्र विकसित हो रहा है जिसे संज्ञानात्मक विज्ञान कहा जा रहा है। संज्ञानात्मक विज्ञान ने मूलभूत विज्ञान के रूप में अपनी स्वतंत्र स्थिति अर्जित कर ली है।

संज्ञानात्मक विज्ञान अनुसंधान का एक समकालीन क्षेत्र है जो ज्ञान की प्रकृति, इसके घटक, इसके विकास और उपयोग से संबंधित प्रश्नों के उत्तरों से विकसित हो रहा है। इस क्षेत्र के अनुसंधानकर्ता चिन्तन में बाह्य जगत के आन्तरिक प्रतिनिधानों की भूमिका के बारे में सहमत हैं। संज्ञानात्मक वैज्ञानिक भिन्नताओं आदि कारकों पर जोर नहीं देते हैं। इसमें अन्तर्विज्ञानीय अनुसंधानों पर जोर दिया जाता है। यह क्षेत्र अभी विकसित हो रहा है और विभिन्न शाखाओं की अंतर्क्रियाओं की व्याख्या से महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त हो रहे हैं।

तंत्रिका वैज्ञानिकों ने संज्ञानात्मक विज्ञान में अनुसंधान के लिए अनेक उपयोगी प्रविधियाँ विकसित की है। उदाहरण के लिए सी.टी., पी.ई.टी., सी.टी. स्कैन, एम.आर.आइ., एफ.एम.आर.आई., ई.ई.जी. आदि। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि दुर्घटना, गाँठ अथवा आघात से उत्पन्न मस्तिष्क क्षति में ऊतकों का क्षय होने लगता है। पी.ई.टी. से सूचना मिली है कि संज्ञानात्मक कार्यों के भिन्न-भिन्न होने पर मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्रों के रक्त प्रवाह में वृद्धि पायी जाती है।

भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा अर्जन में भाषा के लिए आवश्यक मानसिक प्रक्रियाओं के अनुसंधान पर कार्य किया है और उसे जारी रखने का प्रोत्साहन दिया है।

कंप्यूटर विज्ञान की सहायता से मानसिक प्रक्रियाओं के बारे में ज्ञान कंप्यूटर की संक्रियाओं से तुलना करके प्राप्त किया जा सकता है। हमारे संपर्क में किसी उद्दीपक के आने पर सूचना का प्रवाह घटित होता है। ज्ञानेन्द्रियाँ सूचनाओं को ग्रहण करती हैं और मस्तिष्क में संग्रहीत सूचनाओं से तुलना करती हैं जिसके आधार पर व्यक्ति निर्णय लेता है। इस प्रकार प्राणी में सूचना प्रवाह तथा प्राणी एवं वातावरण में अन्तर्क्रिया की व्याख्या की जा सकती है। अनेक सरल मानसिक संक्रियाओं का समूहीकरण कर जटिल संज्ञानात्मक व्यवहार उत्पन्न किये जा सकते हैं।

कंप्यूटर विज्ञान की शाखा कृत्रिम बुद्धि के अंतर्गत पारम्परिक रूप से मनुष्यों की उच्च मानसिक प्रक्रियाओं से संबंधित कंप्यूटर कार्यक्रम तैयार किये हैं। इस क्षेत्र के विशेषज्ञों ने भाषा अर्जन और समस्या समाधान के संदर्भ में महत्वपूर्ण अनुसंधान किया है। आजकल मूलभूत दृष्टिपरक संक्रमण के अनुसंधान के बारे में गतिविधियाँ बढ़ रही हैं।

संज्ञानात्मक विज्ञान को मूलभूत विज्ञान के अंतर्गत माना जाता है। भविष्य में उपयोगिता के कारण सभी विकसित और कुछ विकासशील देश इसके अध्यापन और अनुसंधान को प्रोत्साहन दे रहे हैं। अपने देश में इस क्षेत्र में उल्लेखनीय शुभारंभ हो गया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय परिसर में व्यवहारात्मक और संज्ञानात्मक विज्ञान केंद्र की स्थापना कर दी है। आजकल इस केंद्र में संज्ञानात्मक विज्ञान का परास्नातक स्तर पर अध्यापन और डॉक्टॅरल अनुसंधान कार्यक्रम संचालित हैं। इसकी गतिविधियाँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हो रही हैं।

- डॉ. कृष्ण प्रकाश त्रिपाठी
157, बाघम्बरी योजना, इलाहाबाद - 211 006

4. पौधों में भी प्राणचेतना विद्यमान

जीव-जंतुओं की ही तरह पेड़-पौधों में भी प्राण होता है। वे चलते-फिरते भले न हों, पर उनके अंदर की भी भाव-

संवेदनाएँ हिलोरे मारती हैं। हम भले ही उनकी मूक भाषा को न समझ सकें, लेकिन पौधे हमेशा अपनी भावनाओं का आदान-प्रदान करते हैं। वे मानवीय क्रियाकलापों यहाँ तक कि उनके विचारों एवं भावतरंगों से भी प्रभावित होते हैं। अमरीका के पॉलीग्राफ विशेषज्ञ क्लीव वेक्सटर ने अपने कई प्रयोगों से यह निष्कर्ष पाया कि पौधे भी मनुष्य की ही तरह संवेदना व्यक्त करते हैं। उन्होंने एक ड्रेकाएना पौधे के पत्तों में पॉलीग्राफ के इलेक्ट्रोड लगाए। इसका उद्देश्य पौधे की जड़ों से पत्तों में बढ़ने वाली पानी की गति का मापन करना था। नियम के अनुसार जब पानी पौधों के पत्तों में पहुँचता है तो प्रतिरोध कम हो जाता है और अनुरेखण ऊपर हो जाता है। लेकिन प्रयोग के तहत वेक्सटर ने इस नियम के विपरीत घटित होते देखा। चार्ट मानवीय भावनात्मक उद्वेलन के अनुरूप मापन दे रहा था। वेक्सटर को विश्वास नहीं हो पाया कि पौधा कैसे भावनात्मक जवाब दे रहा है। उन्होंने अपनी तीव्र जिज्ञासा के समाधान के लिए प्रयोग को आगे बढ़ाया। जिसके अंतर्गत पौधे को आग लगाकर डराया जाना था। वेक्सटर ने जैसे ही माचिस जलाने की बात सोची, पी.जी.आर. में अद्भुत परिवर्तन आ गया। वे पौधे से कई फुट दूर थे और माचिस जलाई तक नहीं थीं, किंतु पॉलीग्राफ चार्ट पर पौधे की क्रियाशीलता अंकित हो रही थी। इसके पश्चात वेक्सटर ने समुद्री झींगे को वहीं पास ही में उबलते पानी में डाला। पुनः पौधे ने बहुत खीझ एवं रोष व्यक्त किया। वेक्सटर आश्चर्यचकित थे कि कोशिकाएँ दूसरी जीवित कोशिकाओं को तनाव के संकेत देने में समर्थ होती हैं? क्या पौधे पशुओं की भावनाओं से भी प्रभावित होते हैं? इसी तरह की मानवीय त्रुटियों से बचने के लिए एक अन्य प्रयोग पूरी तरह यांत्रिक रूप से किया गया, जिसमें झींगे को निर्धारित समय पर मरना था।

समुद्री झींगे के पास कोई मनुष्य नहीं था। मारे जाने वाले झींगे से दूर तीन अलग-अलग पौधों को अलग-अलग कमरों में इलेक्ट्रोड से युक्त किया गया। पॉलीग्राफ के चार्ट से पता चला कि तीनों पौधों ने झींगे की मृत्यु के समय अपनी भावनात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की। इसी प्रयोग को वेक्सटर व उनके अन्य साथियों ने कई बार और अधिक संवेदनशील यंत्रों के माध्यम से किया, किंतु हर बार वही परिणाम सामने आए। इन प्रयोगों से वेक्सटर की यह धारणा बनी कि समस्त जीवित प्राणी कोशिकीय स्तर पर चेतना द्वारा जुड़े हैं। इतना ही नहीं, पौधे, मनुष्य एवं जीव-जंतु एक दूसरे से अब तक के ज्ञात दूर संवेदी संवाद के तरीकों से भी उच्चतर स्तर पर संवाद कर सकते हैं। इसमें दूरी भी कोई बाधा नहीं है।

मजेदार बात यह भी है कि पौधे अपने स्वामी व देखभाल करने वालों के प्रति विश्वास एवं अपनत्व के भाव प्रदर्शित करते हैं और अपरिचितों तथा नुकसान पहुँचाने वाले के प्रति भय व्यक्त करते हैं। वेक्सटर ने इस प्रयोग को कई बार स्वयं को एक अच्छे व्यक्ति की भूमिका में लाकर व अपने सहयोगी बॉब हेनसम को एक खलनायक की भूमिका में रखकर सत्यापित किया। जब कभी प्रयोगशाला में कार्य के दौरान वेक्सटर की ऊँगली कटती या उन्हें किसी तरह से चोट पहुँचती तो पौधे अपनी संवेदनात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करते। भारत के सुविख्यात वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बसु ने बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में पौधों की संवेदनशीलता को प्रमाणित किया था। उनके अनुसार उत्प्रेरकों के प्रभाव से प्रेम, घृणा, भय, प्रसन्नता, दर्द, विस्मय आदि संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ पौधों में उतनी ही सार्वभौम हैं, जितनी कि पशुओं में।

पौधे अपना बचाव भी हमला होने पर करते हैं। पौधों में भी प्रतिरक्षा प्रणाली होती है। पर यह असर तभी करती है जब कोई कीट उसकी पत्तियों को चबाना शुरू करता है। इस प्रवृत्ति को प्रेरित प्रतिरोध की संज्ञा दी गई है। शोध के अनुसार, जैसे ही कोई कीट पत्तियों को चबाना शुरू करना है,पौधों से जासमोनिक अम्ल निकलना शुरू होता है। इससे एक ऐसा रसायन बनना है, जिसका स्वाद कीट को नहीं भाता और वह पीछे हटने के लिए विवश होता है। वरिष्ठ शोध रसायनविद् डॉ. मार्कल वोगेल ने मनुष्य व पौधों के बीच ऊर्जा के हस्तांतरण व संवाद विषय पर गहन शोध/ अनुसंधान किया है। अपने प्रयोगों से वे यह सिद्ध कर चुके हैं कि मन के अच्छे भाव विचारों द्वारा संप्रेषित ऊर्जा पौधे की प्राणशक्ति को सीधे प्रभावित करती है। इस प्रयोग के अंतर्गत तोड़े गए चिराबेल के पत्ते को चार सप्ताह तक हरा-भरा व जीवित रखा गया, जबकि उसी समय तोड़े गए अन्य पत्ते जल्दी ही सूखकर पीले पड़ गए। वोगेल ने मनुष्य के साथ पौधों के स्वाद को जानने का प्रयोग भी किया।

इस प्रयोग के अंतर्गत उन्होंने गैलवेनोमीटर फिट किया। इसी के साथ स्वयं को वृक्ष के सामने लाकर पौधे के प्रति अच्छे व सौहार्दपूर्ण विचारों को संप्रेषित किया। प्रत्येक बार जब भी वोगेल ने यह प्रयोग किया, चार्ट पर पेन होल्डर ने अपनी सक्रियता दर्ज कराई। वोगेल इन क्षणों में अपने हाथ की हथेलियों में पौधों से उमड़ता ऊर्जा प्रवाह अनुभव कर रहे थे। उन्होंने पाया कि पौधे भी सक्रियता एवं निष्क्रियता के दौर से गुजरते हैं। अपने अनुसंधान के द्वारा वोगेल यह भी सिद्ध कर चुके हैं कि मनुष्य वानस्पतिक जीवन से संवाद कर सकता है।

पेड़-पौधों में संवेदना कम नहीं है। भले ही वे मनुष्य की तरह देख या सुन न सकते हों, किंतु मनुष्य के भावों को समझने में पूरी तरह से सक्षम हैं। पौधे उस ऊर्जा को भी प्रसारित करते हैं, जो मनुष्य के लिए लाभदायक होती है। अब तो मानव पौधों को मनचाहे ढंग से बना सकता है। पौधों को मनचाहे ढंग से बनाने और गढ़ने का सिलसिला उस समय शुरू हुआ जब वैज्ञानिकों ने डी. एन. ए. की बनावट का पता लगा लिया तथा साथ ही यह भी पता लगा लिया कि किस प्रकार डी. एन. ए. में काट-छाँट और जोड़-तोड़ के द्वारा वांछित जीन को उसमें से निकालना और फिर किसी वाहक में डालना संभव है। जेनेटिक इंजीनियरिंग के अंतर्गत परखनली में पौधे के किसी भी हिस्से की कोशिकाएं पनपायी जाती है, इसके बाद इसमें वांछित जीन डाला जाता है जो कि डी. एन. ए. का एक टुकड़ा होता है। आज ऊतक संवर्द्धन, भ्रूण-संवर्द्धन, पौध-प्रवर्द्धन विधियां हमें जैव-प्रौद्योगिकी के द्वारा ही प्राप्त हुई है। मगर प्रश्न यह उठता है क्या आगे चलकर ये सब हमारे लिए लाभदायक ही होंगे।

- विजन कुमार पाण्डेय
बड़ी बाग, लंका मैदान, (मजार के पास),
गाजीपुर-233 001 (उ.प्र.)

5. उपचारक होता है पालतू जानवरों का स्पर्श और साहचर्य

चिकित्सा या उपचार शब्द सुनते ही हमारे मन में सबसे पहले जो छवि निर्मित होती है वह है डॉक्टर, नर्स, हॉस्पीटल, कैप्सूल, इंजेक्शन और इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं की। इन सब व्यक्तियों और वस्तुओं का चिकित्सा से गहरा संबंध है लेकिन चिकित्सा या उपचार में और भी न जाने कितनी वस्तुओं और स्थितियों का महत्वपूर्ण स्थान है। दुनिया में न जाने कितनी अजीबो-गरीब चीज़ों और स्थितियों से उपचार में मदद ली जाती है। लोग दुख-दर्द से निजात पाने के लिए क्या-क्या नहीं करते? मंगोलिया के लोग हाई ब्लडप्रेशर से मुक्ति पाने के लिए बिल्ली को धीरे-धीरे सहलाते हैं। वस्तुतः बिल्ली को सहलाने का अर्थ है बिल्ली का साहचर्य प्राप्त होना और वह साहचर्य रोगी को सुकून प्रदान करने में सक्षम है और सुकून उपचार का सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व है। बिल्ली ही नहीं अपितु सभी पालतू पशु-पक्षी अपने पालने वाले को आनंद की अनुभूति प्रदान कर उसके उपचार में सहायक होते हैं।

आज दुनिया के विकसित देशों में तथा अन्य देशों के बड़े-बड़े शहरों में लोग अत्यंत व्यस्त हो गए हैं। ऐसे में परिवारों में अनेक समस्याएँ पैदा हो गई हैं। लोगों के पास दूसरों के लिए समय नहीं है। सब अपने-अपने कार्यों में लगे रहते हैं। ऐसे में जो लोग अकेले पड़ जाते हैं उनका जीना दूभर हो जाता है। इस अकेलेपन से उबरने का एकमात्र उपाय है किसी का साहचर्य। जब व्यक्ति का साहचर्य उपलब्ध नहीं है तो ऐसे में पालतू जानवर या 'पैट' से अच्छा कोई विकल्प नहीं। अकेलापन व्यक्ति को निराशा से भर देता है जिससे अनेक बीमारियाँ होने का खतरा बढ़ जाता है। जो लोग नितांत अकेले होते हैं उनका एकाकीपन दूर कर उन्हें रोगों से बचाने के लिए जानवर पालने से बढ़िया कोई उपचार नहीं।

जिन दंपतियों के बच्चे नहीं होते वे बच्चे की कमी अपने पैट से पूरी कर सकते हैं। एक नन्हें जानवर का पालना भी कम रोमांचक नहीं होता। धीरे-धीरे यह रोमांच प्यार और वात्सल्य में परिवर्तित होकर अत्यंत आनंद प्रदान करने लगता है जो पालने वाले के तनाव के स्तर को कम करके उसे रोगावरोधक और रोगोपचारक क्षमता प्रदान करने में सक्षम होता है। वृद्धावस्था में भी पालतू जानवरों की मदद से एकाकीपन दूर किया जा सकता है और साथ ही अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय जीवन व्यतीत करना भी संभव होता है। जितनी अधिक सक्रियता उतना ही रोगों और बुढ़ापे की परेशानी से मुक्ति।

पालतू जानवर मनुष्य या बच्चों की अपेक्षा कई मायनों में अच्छे मित्र या सहायक सिद्ध होते हैं क्योंकि ये प्रतिवाद नहीं करते। इसके कारण मनुष्य अधिकाधिक शांति का अनुभव करता है। क्रोध और उत्तेजना से बचा रहता है। इसका ये अर्थ नहीं है कि बच्चों का व दूसरे रिश्तों का कोई महत्व नहीं है लेकिन पालतू जानवरों या पैट्स से मनुष्य का रिश्ता किसी भी तरह कम महत्वपूर्ण नहीं है। भरा-पूरा घर-परिवार है तो भी पालतू जानवरों का महत्व अपने स्थान पर है। मानवीय संबंध कहीं न कहीं स्वार्थों से जुड़े होते हैं लेकिन मनुष्य और जीव जंतुओं का संबंध बिना किसी शर्त और बिना स्वार्थ के होता है। यह संबंध मनुष्य में अच्छे गुणों का विकास करने में भी सक्षम है। मनुष्य जितना अधिक अच्छे गुणों से युक्त होगा, जितना अधिक सकारात्मक भावों से ओतप्रोत होगा उतना ही अधिक स्वस्थ और रोगमुक्त होगा।

पशु-पक्षियों का साहचर्य प्राप्त करना हमारी सुदीर्घ परंपरा का अटूट हिस्सा है। इसे धर्म से भी संबंधित किया गया है। कुछ लोग सुबह-सुबह पक्षियों को दाना चुगाने जाते

हैं। यह कार्य पक्षियों को दाना चुगाने के बहाने उनका साहचर्य प्राप्त करने का प्रयास ज्यादा है। पक्षी अत्यंत निकट आ जाते हैं और हथेली पर रखे दाने भी उठा लेते हैं। ये आनंद दायक क्षण आरोग्य प्रदान करने वाले होते हैं। कई लोग चींटियों को आटा डालते हैं। मछलियों को भोजन खिलाते हैं। मंगलवार को बंदरों को फल, चने या चूरमा खिलाने जाते हैं। शनिवार को काले कुत्ते को तेल से चुपड़ी रोटी खिलाते हैं। कई घरों में रोज़ सुबह गाय और कुत्ते को रोटी सबसे पहले निकाली जाती है। श्राद्ध के दिनों में ही ब्राह्मणों के साथ-साथ कौओं को भी खीर-पूड़ी खिलाई जाती है। ये स्थिति जानवरों के प्रति हमारे प्रेम और आकर्षण को ही स्पष्ट करती है। जहाँ प्रेम है वहीं आनंद है और आनंद के क्षण उपचारक होते हैं।

टहलना या दौड़ लगाना स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। यदि आप कुत्ता पालते हैं तो उसे टहलाने के लिए भी ले जाएँगे। इससे आपको व्यायाम के लाभ स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। अकेला व्यक्ति प्रायः बाहर नहीं निकलता और यह जरूरी नहीं कि उसका साथ देने के लिए कोई व्यक्ति उपलब्ध हो लेकिन यदि आपने कुत्ता पाल रखा है तो वह आपको बाहर निकालने का सुअवसर प्रदान करेगा क्योंकि उसके बहाने से या उसकी ज़रूरत के लिए आपको बाहर जाना ही पड़ेगा। यदि कोई जानवर पाला है तो उसकी देखभाल भी अवश्य ही करनी पड़ेगी। उसके भोजन और दूसरी ज़रूरतों को पूरा करना होगा। इससे व्यक्ति में देखभाल या सेवा शुश्रूषा जैसे गुणों का विकास होता है। मूक प्राणी की देखभाल से उसमें करुणा का विकास होता है।

कुत्ते हृदय-रोगियों के उत्तम साथी माने गए हैं। हृदय-रोगियों के लिए ही नहीं डिप्रेशन के शिकार लोगों के लिए भी कुत्ता पालना लाभदायक है क्योंकि कुत्ता पालना डिप्रेशन दूर करने का सरल उपचार है। एक कुत्ता या पिल्ला जब अपने पालक को चूमता है, उसकी गोद में जाने का प्रयास करता है अथवा अपनी चुलबुली हरकतों से उसका ध्यान आकर्षित करता है तो उसकी ये सभी चेष्टाएँ किसी भी व्यक्ति की खिन्न मनोदशा को बदलने में सक्षम होती हैं। उसकी ये सारी चेष्टाएँ और उसका प्यार पूर्णत निःस्वार्थ होता है जिससे आपको वैसा ही भावनात्मक सहयोग मिलता है जिसकी अपेक्षा एक अत्यंत नज़दीकी रिश्ते के व्यक्ति से की जा सकती है। व्यक्ति को व्यक्ति के साथ आपसी संबंधों में धोखा मिल सकता है लेकिन जानवरों से नहीं। ऐसे में कुत्ता पालने वाला व्यक्ति कैसे डिप्रेशन का शिकार बना रह सकता है?

जानवरों या कुत्तों के पालने से व्यक्ति की दुश्चिंता का स्तर कम होता है। वह तनावमुक्त रहता है अतः रक्त चाप सामान्य रहता है। यदि रक्त चाप बढ़ा हुआ हो तो वह सामान्य स्तर पर आ जाता है। एक्वेरियम में तैरती हुई कलाकृतियों जैसी रंग-बिरंगी मछलियों को देखने अथवा बाहर से छूने में, पक्षियों को देखने तथा उनकी चहचहाट सुनने में, डॉल्फिनेरियम में डॉल्फिन मछलियों को करतब करते देखने, उनके साथ खेलने तथा उन्हें छूने में अथवा अपने पालतू जानवर को सहलाने में अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति होती है जिससे शरीर में लाभदायक हॉर्मोंस उत्सर्जित होते हैं जो हृदयाघात तथा कैंसर जैसी घातक बीमारियों से मुक्ति दिलाने में सहायक होते हैं।

स्कूली बच्चे जब पहली बार भ्रमण पर निकलते हैं तो उनकी पहली पसंद होती है चिड़ियाघर। दुनिया में शायद ही कोई ऐसा बड़ा शहर हो जहाँ एक चिड़ियाघर न हो। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी पशु-पक्षियों और पालतू जानवरों का साहचर्य पाना चाहते हैं। आज अत्यंत तीव्र गति से चलने वाले यातायात के साधन मौजूद हैं लेकिन शौकिया तौर पर मनुष्य आज भी हाथी, घोड़े अथवा ऊँट की सवारी करना चाहते है क्योंकि यह उसके लिए आनंद का स्रोत है। पुराने समय में तो राजा-महाराजाओं को शेर-चीते जैसे खूंख़ार जंगली जीव पालने का भी शौक होता था। अनेक लोगों ने अपने महलों या किलों के आसपास या उद्यानों में छोटे-छोटे चिड़ियाघर भी बनवा रखे थे। वस्तुतः इन सबका विकास पशु-पक्षियों के साहचर्य से मिलने वाले लाभ के कारण ही हुआ चाहे कुछ लोगों को इसका पता था या नहीं।

डॉल्फिन एक ऐसा जीव है जो मनुष्य का बड़ा अच्छा मित्र है। डॉल्फिन का मस्तिष्क काफी विकसित होता है। उसके मस्तिष्क से उत्पन्न होने वाली तरंगें और ध्वनि उपचार में सहायक होती है। यह विश्वास किया जाता है कि यदि डॉल्फिन किसी गर्भवती महिला के उदर को स्पर्श कर दें तो उसका स्पर्श गर्भस्थ शिशु के मस्तिष्क की कोशिकाओं के उद्दीपन में सहायक होता है। पेरु की राजधानी लीमा में एक होटल में इस प्रकार की डॉल्फिन स्पर्श चिकित्सा की सुविधा उपलब्ध है।

पैट्स से उपचार का आधार वास्तव में उनका सीधा-सच्चा प्यार है। उनका भोलापन मन मोह लेता है। उनकी स्वामिभक्ति, आत्मविश्वास और भावनात्मकता स्थिरता प्रदान करती है। यदि हम विश्व साहित्य का अवलोकन करें तो पाते हैं कि अधिकांश साहित्य जहाँ मनुष्य के छल-कपट,

धोखाधड़ी, बेईमानी, अत्याचार तथा बेवफाई से भरा है वहीं जानवरों की वफादारी, प्यार और सहयोग के अनेकों प्रसंग भरे पड़े हैं। नन्हें जीव-जंतुओं से लेकर विशालकाय हाथी तक सभी मनुष्य के सहयोगी और वफादार रहे हैं। स्वामिभक्त घोड़ों और कुत्तों की मिसालों से साहित्य भरा पड़ा है। यदि आपने किसी जानवर की किसी मनुष्य से बेवफाई का किस्सा सुना है या देखा है तो मुझे भी अवश्य बतलाइये। आज तक किसी व्यक्ति ने किसी जानवर की बेवफाई के कारण उसका कत्ल नहीं किया है। हाँ ऐसे किस्से ज़रूर सुनने में आए हैं जब अपने पालतू जानवर को बचाने के लिए उसको तंग करने वाले व्यक्ति का किसी ने खून कर दिया हो। यह मनुष्य और उसके पैट के बीच गहन भावनात्मक संबंध को दर्शाता है। इस प्रकार के गहन भावात्मक संबंध का विकास ही व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। यही पैट की उपचारक शक्ति है जो व्यक्ति को अवसाद से निकालने में सहायक है। किसी निकट संबंधी या प्रिय व्यक्ति की मृत्यु अथवा अलगाव की पीड़ा को दूर करने के लिए कुत्ता पालना एक अच्छा उपचार है।

यदि विभिन्न प्रकार के दबाव, तनाव और दुश्चिंताओं से मुक्त रहना है, इनसे उत्पन्न घातक मनोदहिक रोगों से बचना है तो आज ही एक प्यारा-सा पप्पी ले आइये अन्यथा गली में आवारा घूमते किसी कुत्ते के बच्चे (पिल्ले) को ही अपना लीजिए क्योंकि पटथरेपी के लिए किसी मँहगी नस्ल के पट की नहीं अपितु एक अदद प्यार करने वाले जीव की जरूरत है।

- सीताराम गुप्ता

ए.डी-106-सी, पीतमपुरा, नयी दिल्ली-110 034

6. गार्डनिंग थैरेपी अर्थात् बागबानी द्वारा व्याधियों का उपचार

पादप–चिकित्सा अर्थात् पेड़–पौधों अथवा जड़ी–बूटियों द्वारा चिकित्सा के विषय में तो आपने न केवल सुना या पढ़ा होगा अपितु इस विधि से उपचार भी अवश्य किया होगा। जैसे चाय में अदरक या तुलसी की पत्तियाँ उबाल कर पीना, दूध में हल्दी डाल कर पीना या हर्बल चाय का प्रयोग आदि। लेकिन विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधों, वनस्पतियों, साग–सब्जियों तथा फल–फूलों को उगाना, उनकी देखभाल करना, जो एक विज्ञान भी है तथा एक कला भी है, जैसे बागबानी, पुष्पोत्पादन, फलोत्पादन या सब्जियों की खेती आदि न केवल एक अच्छी हॉबी या शौक है अपितु एक उपचारक पद्धति भी है।

पौधों को उगाना, उनकी देखभाल करना और उनकी पैदावार से लाभ कमाना एक व्यवसाय हो सकता है लेकिन यह एक रचनात्मक कार्य भी है विशेष रूप से शौकिया बागबानी या गमलों में पौधे उगाना। रचनात्मक कार्य से न केवल हमारे ऊर्जा के स्तर में वृद्धि होती है बल्कि जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी हमारी क्षमता और कार्य कुशलता में वृद्धि होती है। जब हताशा हावी हो जाए, निराशा से नींद न आए और अवसाद का अंत न हो तो ऐसे में शरीर के तने हुए तंतुओं को तनाव रहित करने के लिए तथा मन–मस्तिष्क को शांत करने एवं संयत रखने के लिए मनोचिकित्सक, खेती–बाड़ी और बागबानी करने का परामर्श देते हैं।

ऑक्यूपेशनल थैरेपी या व्यावसायिक चिकित्सा में सिलाई–कढ़ाई, टोकरी बनना, दरी–कालीन बुनना, मिट्टी अथवा धातु से मूर्तियाँ बनाना, लकड़ी, बाँस अथवा बेंत का सामान बनाना या चित्रकला आदि सहायक होते हैं। लेकिन बागबानी इन सबमें महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें हमारी रचनात्मकता के स्तर में वृद्धि के साथ–साथ प्रकृति से भी हमारा जुड़ाव हो जाता है। बीजों से अंकुर निकलना, कलमों की गाँठों से पत्तियाँ विकसित होना, पौधों का बढ़ना, निरंतर नयी–नयी पत्तियों का आना एवं उनके रंग में परिवर्तन होना, कलियों का दृष्टिगोचर होना तथा फूलों का खिलना ये सब ऐसी क्रियाएँ हैं जिनका अवलोकन हमें प्रकृति से जोड़ कर हममें एक नयी स्फूर्ति, एक नयी चेतना भर देता है।

सर्दियों में पत्र–पुष्प विहीन कोई ठूँठ–सा लगने वाला पौधा जब वसंत ऋतु का स्पर्श पाकर गाँठ दर गाँठ फूटने लगता है, पल्लवित–पुष्पित होकर अपनी छटा बिखेरने लगता है तो उसे देख कर हमारा मन भी पल्लवित ·पुष्पित होने लगता है। हमारी कल्पनाशीलता का विकास होता है तथा रचनात्मकता के स्तर में वृद्धि होती है। मन प्रसन्न होने लगता है। मन प्रसन्न हो तो तन के प्रसन्न अर्थात् स्वस्थ होने में देर नहीं लगती। प्रकृति अपने नये–नये रूपों में प्रकट होने लगती है। प्रकृति की इस अनुपम रचनात्मकता को देखकर हम स्वयं रचनात्मक होने लगते हैं, एक कलाकार बन जाते हैं और पुनः दुगने वेग से पौधों की देखभाल में जुट जाते हैं। मैंने अपने जीवन में जो कविता लिखी थी वह पौधों की देखभाल के दौरान ही निःसृत हुई थी।

पौधों की देखभाल, कटाई–छँटाई उचित मात्रा में खाद–पानी देना, उनको सलीके से रखना तथा सजाना–सँवारना हमारे स्वयं के अंदर एक सुव्यवस्था को उत्पन्न कर देता है। हम अपने जीवन में अधिकाधिक व्यवस्थित होने

लगते हैं और इस सब का हमारे स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। पौधों की कटाई–छँटाई अथवा प्रूनिंग और उसके बाद नयी–नयी कोंपलों का विकसित होना इस बात का प्रतीक है कि हम अपने मन में समाए नकारात्मक तथा अनुपयोगी विचारों से मुक्त होकर उनके स्थान पर उपयोगी सराकात्मक विचारों को ग्रहण करने के लिए तत्पर हैं। 'योग' में वर्णित यम और नियम की तरह जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण के विकास के लिए यह अनिवार्य है।

जब प्रतिकूल मौसम की वजह से अथवा प्राकृतिक कारणों से पौधे नष्ट हो जाते हैं अथवा अपेक्षित मात्रा में वृद्धि नहीं होती या फूल–फल नहीं आते तो इसके परिणाम स्वरूप हमारे अंदर धैर्य जैसे गुणों का विकास होने लगता है। हम जीवन में अस्थिरता अथवा लाभ–हानि व ऊँच–नीच के प्रतिकूल प्रभावों को झेलने में सक्षम हो जाते हैं तथा अत्यंत सहजता से कठिनाइयों का मुकाबला करते हुए पुनः अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हैं।

प्राकृतिक सौंदर्य से अभिभूत होना स्वाभाविक है अतः हम प्रकृति का सान्निध्य पाने के लिए सदैव तत्पर एवं उद्यत रहते हैं और यदि बागबानी के रूप में इस प्राकृतिक सौंदर्य का निर्माण हम स्वयं करते हैं तो हमें अद्वितीय आनंद की प्राप्ति होती है। यदि हम अपने रहने के कमरे में बनावटी पौधों की जगह वास्तविक पौधे रखे तो हमारे पूरे परिवार के स्वास्थ्य और चिंतन पर इसका अत्यंत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इससे हमें न केवल प्राकृतिक परिवेश मिलता है अपितु ऑक्सीजन के रूप में अधिकाधिक मात्रा में जीवनदायिनी ऊर्जा भी प्राप्त होती है। हमारी प्राणदायिनी शक्ति अथवा ऊर्जा के स्तर में वृद्धि का सीधा सा तात्पर्य है हमारा अधिकाधिक स्वस्थ तथा उत्साहपूर्ण होना।

पेड़–पौधे मात्र घर की शोभा ही नहीं बढ़ाते अपितु घर में व्याप्त ज़हरीली गैसों को भी सोख लेते हैं जिससे हम अनेक व्याधियों से बचे रह सकते हैं। नये भवन के निर्माण, फर्नीशिंग अथवा रंग–रोगन के दौरान निकलने वाली गैसों के घातक प्रभाव को रोकने में तो कई पेड़–पौधे अत्यंत उपयोगी होते हैं। प्रकृति अथवा पेड़–पौधों का सामीप्य न केवल पर्यावरण प्रदूषण को सोखकर हमें स्वच्छ परिवेश उपलब्ध कराता है अपितु हमारे तनाव, दुष्चिंता, क्रोध और कुंठा जैसे नकारात्मक मनोभावों को अपने में सोखकर हमें सकारात्मक ऊर्जा तथा मनोभावों से ओतप्रोत कर देता है। पौधों की देखभाल से उत्पन्न खुशी हमें अन्य जीव–जंतुओं तथा समाज के विभिन्न वर्गों व व्यक्तियों की देखभाल तथा जिम्मेदारी लेने के लिए उत्प्रेरक तत्त्व का काम भी करती है।

पेड़–पौधों द्वारा मनोरोगों का उपचार करने के लिए अमरीका के गौटिस्बर्ग मैरीलैंड में अमरीकन हॉर्टीकल्चर थैरेपी एसोसिएशन नामक समिति का गठन किया गया है जिसने इस क्षेत्र में कई महत्त्वपूर्ण प्रयोग और शोधकार्य किए हैं। प्रयोगों और शोधकार्यों के आधार पर समिति का दावा है कि मिट्टी की महक मन-मस्तिष्क एवं स्नायुतंत्र पर सकारात्मक प्रभाव डालती हैं। जंगली खर–पतवार की कटाई–छँटाई से अवसाद कम होता है और गहन हरीतिमा तथा प्रतिदिन बढ़ते पेड़–पौधे निराशा को दूर कर जीवन के प्रति आशा तथा उत्साह का संचार करने में पूरी तरह सक्षम होते हैं।

गार्डनिंग अर्थात् बागबानी न केवल एक अच्छी हॉबी अथवा उपचार पद्धति ही है अपितु इससे पुरूषों की यौन क्षमता पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस बात का खुलासा अभी हाल ही में एक मेडिकल जर्नल में छपी एक नयी अध्ययन रिपोर्ट ने किया है। रिपॉर्ट के अनुसार सप्ताह में मात्र आधा घंटे की बागबानी के फलस्वरूप व्यक्ति की यौन क्षमता में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हो सकती है अतः अपनी यौन क्षमता को बनाए रखने तथा नपुंसकता से बचने के लिए न केवल बागबानी जैसी हॉबी को अपनाना चाहिए अपितु नियमित रूप से बागबानी का कार्य करना चाहिए।

शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिए 'योग' एक संपूर्ण पद्धति है और बागबानी करना भी किसी प्रकार योग से कम नहीं ठहरता। योग के आठ अंगों में से योगासन, प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यान का अभ्यास इसमें निहित है। बागबानी में थोड़ा बहुत शारीरिक श्रम भी करना पड़ता है जो व्यायाम अथवा योगासन के समान लाभप्रद है। पौधों की देखभाल हम जिस तन्मयता से करते हैं उससे हमारा ध्यान अन्य स्थानों अथवा स्थितियों से हटकर पौधों पर केंद्रित हो जाता है अतः बागबानी द्वारा एकाग्रता अथवा ध्यान के अंतरण का अभ्यास भी होता है। अर्थात् ध्यान को अनेपक्षित दिशा से हटाकर इच्छित घटना या स्थिति पर केंद्रित किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य ये है कि बागबानी में ध्यान अथवा 'मेडिटेशन' के लगभग सभी तत्त्व विद्यमान हैं जो हमें स्वस्थ बनाए रखने तथा रोगमुक्त करने में सक्षम हैं।

मुझे याद है बचपन में हमने घर की छत पर तोरी की बेलें उगाई थीं। जब बीजों से अंकुर निकले तो आश्चर्य और खुशी से मन प्रफुल्लित हो उठा। बेलों के बड़ा होने पर जब वो पीले–पीले फूलों के गुच्छों से लद गईं। और फिर एक दिन अचानक उन पर लगी नन्हीं–नन्हीं तोरियों को देखकर

पूरे शरीर में आनंद का उजस्र स्रोत प्रवाहित हो उठा। यही आनंद का अजस्र स्रोत ही तो आरोग्यकारक है। पादप-विज्ञान की व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करने में भी बागबानी अत्यंत सहायक सिद्ध होती है। तोरी की बेलों पर लगे दो तरह के फूलों के अध्ययन के द्वारा ही मैंने जाना था कि केवल मादा फूलों से ही फल विकसित होते हैं नर फूलों से नहीं और बाद में परागण की पूरी प्रक्रिया तथा परागण में दोनों प्रकार के फूलों की भूमिका अच्छी तरह से समझ सका।

नवरात्र के समय मिट्टी के पात्रों में मिट्टी भरकर जौ उगाए जाते हैं। यह एक तरह से बागबानी अथवा कृषि का ही लघु संस्करण है। दशहरे के दिन पूजा में इनका उपयोग किया जाता है। बागबानी अथवा कृषि का महत्त्व बतलाने के लिए ही वनस्पतियों अथवा फसलों की पूजा को त्योहारों से जोड़ दिया गया है। गंध-चिकित्सा अथवा एरोमाथैरेपी में विभिन्न वनस्पतियों और फूल-पत्तियों से प्राप्त तत्त्वों का ही प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार बागबानी द्वारा गंध-चिकित्सा अथवा एरोमाथैरेपी द्वारा प्राप्त उपचार से भी लाभांवित होना संभव है।

प्रकृति के सान्निध्य से लाभांवित होकर अद्वितीय आनंद की प्राप्ति करने तथा स्वस्थ बने रहने के लिए आप भी बागबानी का सहारा लीजिए। चाहे मात्र एक गमले से शुरूआत करें। भूमि अथवा बाग-बगीचे की सुविधा न हो तो भी कोई बात नहीं। गमलों में लगे पौधों की देखभाल अथवा सेवा-शुश्रूषा करना भी किसी तरह कम सुखकारी नहीं। घर के आसपास किसी पेड़ की देखभाल की जिम्मेदारी भी ली जा सकती है। एक बार ये सिलसिला प्रारंभ हो गया तो पीछे मुड़ कर नहीं देखेंगे। आपके गमलों की संख्या बढ़ती जाएगी। आपके फुर्सत के क्षणों का सदुपयोग ही नहीं होगा बल्कि आपकी व्यस्तता भी घनी होती जाएगी और साथ ही समय की भी आपको कमी महसूस नहीं होगी क्योंकि आप पूर्ण स्वस्थ होंगे। पूर्ण स्वस्थ होने का अर्थ है सदैव समय का अधिकाधिक उपयोग, उत्साहपूर्ण कार्यशैली, नियमित दिनचर्या और निरंतर अच्छे स्वास्थ्य की गारंटी भी। पूर्ण रूप से स्वस्थ एवं उत्साहित बने रहने के लिए आज ही बागबानी को अपनी जीवन शैली का अनिवार्य अंग बना लीजिए।

- सीताराम गुप्ता
ए.डी.-106-सी, पीतमपुरा
नयी दिल्ली - 110 034

7. ग्राफीन एवं उससे कुछ संभावनाएं

कार्बन तत्त्व के गुण विशेष है। यह सभी जीवित प्राणी, वनस्पति में पाया जाता है। कार्बन परमाणु की विशेषता यह है कि यह अन्य कार्बन परमाणु से जुड़कर लंबी श्रृंखला बनाता है, जो विभिन्न नये पदार्थों को बनाता है। कार्बन की एक और विशेषता है कि यह विरोधाभाष गुणों को प्रदर्शित करता है। कार्बन समावयता को प्रदर्शित करता है। कार्बन के दो अपरूप हैं जिनके गुण भिन्न हैं। कार्बन का एक अपरूप डायमन्ड (हीरा) है, जो प्राकृतिक सबसे कटोर पदार्थ है। इसमें कटिंग कर चमक उत्पन्न की जाती है। जितनी अधिक चमक उतना ही अधिक कीमती हीरा होता है। कार्बन का दूसरा अपरूप ग्रेफाइट है, जो सबसे मुलायम है। दोनों ही त्रिविमीय कार्बन हैं।

कुछ वर्षों में भिन्न आकार वाले कार्बन के अपरूपों का आविष्कार किया गया है। इसमें एक अपरूप फुल्लरीन है। दूसरे अपरूप नैनो ट्यूब हैं। अब द्विविमीय कार्बन के अपरूपों का आविष्कार 2004 में हुआ है।

ग्राफीन द्विविमीय बड़ी समतल कार्बन की सीट के रूप में होते हैं। बैंजीन रिंग संरचना वाले बहुत से कार्बन आपस में जुड़कर एकल सतह बनाते हैं। इसे ग्राफीन कहते हैं।

हीरे (डायमन्ड) में कार्बन ट्रेट्राहेड्रल क्रम में जुड़े रहते हैं। एक कार्बन परमाणु अन्य चार कार्बन परमाणु से जुड़कर त्रिविमीय संरचना बनाती है। इस क्रम में क्रिस्टल लैटिस अनम्य (कठोर) होती है। जिससे हीरा में कठोरता आती है। इसके विपरीत ग्रेफाइट में कार्बन षठकोणीय क्रम में जुड़े रहते हैं। सतह कमजोर बंधन से जुड़ी रहती है। इस कारण ग्रेफाइट मुलायम होता है।

कार्बन के विभिन्न रूप निम्न है :

1) त्रिविमीय ग्रेफाइट षठकोणीय बैंजीन चक्र होते हैं।

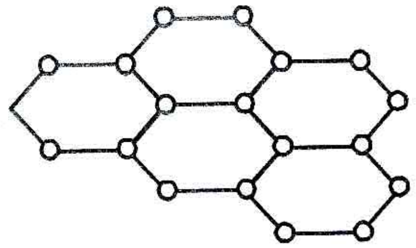

2) शून्यविमीय (जीरो-डी) फुल्लरीन में फुटबॉल गेंद के आकार में बहुत से कार्बन आपस में जुड़े रहते हैं।

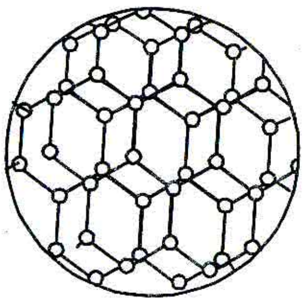

3) एक विमीय (1-डी) बेलनाकार कार्बन ट्यूब को नैनो ट्यूब कहते हैं।

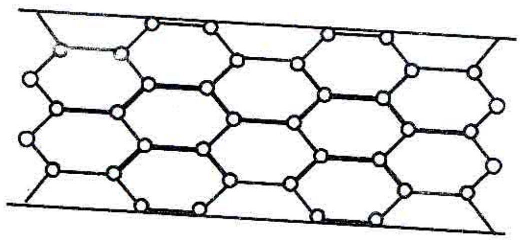

4) द्विविमीय (2-डी) समतल कार्बन शीट (ग्राफीन)

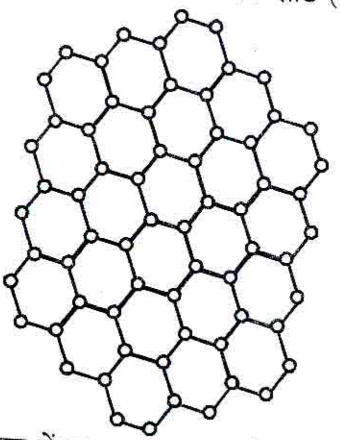

कार्बन - 60 आपस में जुड़कर फुटबॉल जैसा आकार बनाते हैं। इस पिंजड़े जैसी संरचना को फुल्लरीन कहते हैं। कार्बन नैनो ट्यूब की विद्युत चालकता, तार खींचने की शक्ति, तन्य शक्ति अधिक होती है।

समतल षठकोणीय कार्बन क्रम द्वारा बनी संरचना को ग्राफीन कहते हैं। यह हनी कोम्ब संरचना वाली एकल सतह सभी कार्बन बेस तंत्र का आधार है। ग्राफीन बनाने में त्रिविमीय ग्रेफाइट लेते हैं। माइक्रो मेकेनिकल क्लीवेज़ विधि द्वारा एक सतह निकाल लेते हैं जिससे दो द्विविमीय ग्राफीन प्राप्त होती है।

ग्राफीन को ऑक्सीजन युक्त केमिकल समूह से क्रिया कराकर ग्रेफाइट ऑक्साइड बनाते हैं। ऑक्सीजन के कारण एक सतह पृथक हो जाती है। इस प्रकार द्विविमीय ग्राफीन क्रिस्टल प्राप्त होते हैं। सतह की रफनेस (खुरदरा पन) के कारण ग्राफीन स्थिर होती है। इसे सिलिकॉन के स्थान पर उपयोग कर स्थिर ट्रांजिस्टर बनाये जा सकते हैं।

ग्राफीन की पतली चादर को विलियर्ड की टेबिल पर बिछाने में उपयोग में लाते हैं। इस पर्त पर विद्युत आवेश विलियर्ड बॉल का कार्य करती है। ग्राफीन में इलेक्ट्रॉन कार्बन परमाणु के चारों ओर घूमता है। सेमीकन्डक्टर की तुलना में ग्राफीन में इलेक्ट्रॉन अधिक तेजी से चलत हं। ग्राफीन क्वान्टम हॉल प्रभाव को असायमिक रूप से प्रदर्शित करती है।

ग्राफीन की ऊष्मीय चालकता अधिक होती है। कंप्यूटर में सिलिकॉन युक्त प्रोसेसर निश्चित ऑपरेशन तक ही कार्य करता है। जबकि ग्राफीन युक्त प्रोसेसर के ऑपरेशन की कोई सीमा नहीं है। अतः अधिक उपयोगी है। ग्राफीन युक्त ट्रांजिस्टर बहुत अधिक गति से चलते हैं और गर्म भी नहीं होते हैं क्योंकि इनकी ऊष्मीय चालकता अधिक होती है।

ग्राफीन संबंधित पदार्थ तथा क्वान्टम इलेक्ट्रॉडाइनेमिक्स के मध्य सेतु का कार्य करती है। ग्राफीन कार्बन आधारित इलेक्ट्रॉनिकी के लिए नये आयाम स्थापित करेगा।

2006 में अमरीका के जॉर्जिया इंस्टीट्यूट ऑफ टेकनोलॉजी तथा फ्रांस के सी एन आर एस (CNRS) ने एक प्रायोगिक ट्रांजिस्टर, लूप डिवाइज और सरक्यूटरी को ग्राफीन की सहायता से बनाया है। आई बी एम (IBM) के अनुसंधानों ने बताया कि ट्रांजिस्टर की कार्यकुशलता काफी बढ़ जाती है जब ट्रांजिस्टर ग्राफीन से बनाए जाते हैं। ग्राफीन की दो परत सबसे ऊपर रखने से विद्युतीय नॉइज़ समाप्त हो जाता है।

स्पष्ट है कि ग्राफीन एक द्विविमीय विशाल समतल कार्बन शीट है जो भविष्य में इलेक्ट्रॉनिकी के क्षेत्र में कुछ नयी संभावनाओं को जन्म देगी।

डॉ. ए. के. चतुर्वेदी
26, कावेरी एन्क्लेव फेज -
स्वर्ण जयन्ती नगर के पास,
रामघाट रोड, प्रलीगढ़ (उ.प्र.)- 202 001

विशेष स्मरण

सर जगदीशचन्द्र बोस के 150वें जन्म दिवस पर

संजय गोस्वामी

एन.आर.जी., बी.ए.आर.सी., मुंबई - 400 085

सर जगदीशचन्द्र बोस भारत के महान वैज्ञानिकों में से एक थे जिन्होंने एक कठिन प्रयोग करके दिखाया कि पेड़-पौधों में संवेदनाएँ होती हैं, वे सजीव हैं। इससे मानव में पेड़ों के प्रति करुणा जाग उठी। जगदीशचंद्र बोस का जन्म ढाका में अप्रैल 1858 में हुआ था। बचपन से ही उनकी रुचि पेड़-पौधों में खासा थी। उनके पिता ढाका के डिप्टी कलक्टर थे। अतः वे उच्च शिक्षा हेतु विलायत भी गए। वहाँ उन्होंने अपने ज्ञान एवं श्रम के बदौलत नयी-नयी खोजों की ओर जुड़ने लगे। स्वदेश लौटने पर वे कोलकाता में विज्ञान के प्राध्यापक बने, किंतु उनकी रुचि कुछ और ही थी। वे नये-नये आविष्कारों के प्रति गहरी सोच से उसकी आशा तीव्र हो उठी। अनेक समस्याओं को झेलते हुए वे अपने कार्य में जुटे रहे। उन्होंने सर्वप्रथम बेतार-के-तार का महत्वपूर्ण आविष्कार किया। लेकिन इसका श्रेय मारकोनी को प्राप्त हुआ। उन्हें धातुओं के विश्लेषण में भी काफी रुचि थी एवं महत्वपूर्ण शोध भी किये।

उनका हमेशा से लगाव पेड़-पौधे के प्रति था। पेड़-पौधों में संवेदना की मौजूदगी का अहसास कराने हेतु उन्होंने कई ऐसे यंत्र बनाए कि जिससे यह मालूम हुआ, सुख-दुःख में पेड़-पौधे कैसा अनुभव करते हैं। वह एक सजीव पौधे में उतनी ही संवेदना होती है जितनी कि एक मनुष्य में। पेड़-पौधों पर सर्दी, गर्मी, चोट, रसायन आदि का प्रभाव होता है जो एक प्राणी को होता है। वे समय-समय पर हर्षित और दुखित भी होते हैं। उन्हें पीड़ा का अहसास भी होता है। इन सभी को प्रायोगिक तौर पर प्रदर्शित करने हेतु सर बोस महोदय ने काफी मूल्यवान वैज्ञानिक शोध किए। पेड़-पौधों में भूख-प्यास, थकान और ताजगी का अनुभव भी मनुष्य जैसा ही है। इसके लिए उन्होंने उन पर यंत्र लगाकर आंकड़े लिये एवं इसे सत्य सिद्ध किया। अपने इस आविष्कार को लेकर बोस इंग्लैंड गए। वहाँ उन्हें उनके प्रशंसनीय कार्य पर डी.एससी. की उपाधि प्रदान की गयी। बाद में अमरीका ने उन्हें विश्वविद्यालयों में पढ़ाने हेतु निमंत्रित किया गया।

डॉ. बोस के आविष्कार से जर्मनी के वैज्ञानिक इतने प्रभावित हुए कि उन्हें वे एक पूरा विश्वविद्यालय देने को तैयार हो गए। किंतु डॉ. बोस ने भारत की गरिमा को देखते हुए कोलकाता में एक विज्ञान-मंदिर की स्थापना की। यह मंदिर **बोस शोध संस्थान** के नाम से अभी भी प्रसिद्ध है। अपनी कमाई का बड़ा हिस्सा करीबन 15 लाख रुपये उस वक्त उन्होंने बोस शोध संस्थान में लगाया।

डॉ. बोस का देहांत 1937 में हुआ। किन्तु ज्ञान, त्याग और तपस्या से जो आदर्श उन्होंने भारतीय वैज्ञानिकों के सामने दिए हैं वो निसंदेह एक प्रेरणास्रोत हैं।

विविध

हिंदी का विज्ञान साहित्य : कल, आज और कल

डॉ. देवकी नंदन
2205, न्यू जय भारत सोसायटी, प्लॉट 5, सेक्टर-4, द्वारका, नयी दिल्ली - 110 075

किसी भी राष्ट्र की अनमोल संपत्तियों में उसकी राष्ट्रभाषा का साहित्य भी शामिल रहता है, जो कि राष्ट्र की संस्कृति, तहज़ीब, भौतिक व आध्यात्मिक समृद्धि के दर्पण का काम करता है। हिंदी भाषा का विपुल और उन्नत साहित्य आज हमारे लिए गौरव का कारण है। इसका श्रेय उन्हें भी है जिन्होंने पराधीन भारत में हिंदी का दीप जलाए रखा। राष्ट्रभाषा और देश के इन प्रेमियों के फलस्वरूप आज हिदी विश्व के मानचित्र पर खूब सुशोभित है। हिंदी बोलने, समझने वाले अगर बहरीन, निकारागुआ और पराग्वे जैसे देशों में 3% तक ही हैं, तो दूसरी ओर भूटान, फ़ीजी, ग्वाटेमाला, गयाना, मॉरीशस, नेपाल, सूरिनाम, य.ए.ई. और त्रिनदाद जैसे देशों में 30 से 40 प्रतिशत तक हैं। आँकड़ों से पता लगता है कि 100 से अधिक देशों में हिंदी को अनेक लोग बड़े चाव से पढ़ रहे हैं।

हिंदी के ललित साहित्य के साथ-साथ पिछले 200 वर्षों के दौरान हिंदी का विज्ञान साहित्य भी उदय और पल्लवित हुआ है। विज्ञान भारत के लिए नया कभी न था, बल्कि विज्ञान के कई पक्ष हमने विश्व को बताए। ज्योतिष, गणित, वैज्ञानिको, कणाद का परमाणु सिद्धांत, आयुर्वेद, सुश्रुत द्वारा स्थापित शल्यचिकित्सा, खगोलशास्त्र आदि अनेक विषयों पर हिंदी में कुछ न कुछ साहित्य उपलब्ध रहा ही है, परंतु आज विज्ञान का अर्थ है पश्चिमी देशों से फैला पिछले 300 वर्षों का आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी जिसने समूचे विश्व की काया ही पलट दी। हिंदी की कलम ने विज्ञान का ये साहित्य भी बड़ी कुशलता से रचा है। 'हिंदी में विज्ञान लेखन के 100 वर्ष' नामक पुस्तक में डॉ. शिव गोपाल मिश्र हमें बताते हैं कि सन 1990 तक हिंदी में विज्ञान की 6,600 पुस्तकें छप चुकी हैं। वे आगे बताते हैं कि इन पुस्तकों को लिखने वालों यानी विज्ञान लेखकों की संख्या 3040 बैठती है। पुस्तक पढ़ने पर लगा कि लेखक ने ये गणनाएं करते हुए "हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद" जैसी विराट संस्थाओं के योगदान का उल्लेख तक नहीं किया जिसने "परमाणु-विज्ञान" जैसे उन्नत क्षेत्र को अपने अथक प्रयासों से भारतीय जन-जन के बीच लोकप्रिय बनाया है। इस तरह हम देखते हैं कि पुस्तकों व लेखकों की वास्तविक संख्या इस अनुमान से कहीं अधिक होनी चाहिए। इतना ही नहीं, ऐसे भी अनेक लेखक, पत्रकार और वैज्ञानिक हैं जिन्होंने अपने वैज्ञानिक लेखों, विज्ञान नाटकों, कविताओं-कथाओं-समाचारों, वैज्ञानिक अनुवादों अथवा संपादन कार्यों, विज्ञान-गोष्ठी-आयोजनों अथवा शब्दावलि निर्माण के अहम कामों से हिंदी के विज्ञान-साहित्य को लगातार पोषित, सम्पन्न किया है। इन अनगिनत लोगों के सुप्रयासों का फल यह निकला है कि वैज्ञानिक मिज़ाज, तर्क और समझबूझ को खास कर 20वीं सदी के भारतीयों ने दिल खोल कर अपनाया है। उद्योग-धंधों के विज्ञान-पक्ष को इससे बहुत बढ़ावा मिला है और कुरीतियों और अंधविश्वासों में भारी कमी आई है। एक साधारण आदमी की जेब में जब हम मोबाइल फोन देखते हैं तो इसका अर्थ सिर्फ अच्छी मार्केटिंग ही नहीं है, इसका संकेत ये भी है कि वह आदमी विज्ञान की नयी ईजादों को उत्सुकता और सहजता से स्वीकार करता है। इस सहजता का उत्तर ढूँढने पर हम विज्ञान को लोकप्रिय बनाने वाले इस साहित्य तक सहज में ही

पहुँच जाते हैं जो आम आदमी की भाषा में रचा गया है और प्रिंट अथवा इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के ज़रिये प्रसारित हुआ है।

हिंदी में रचे जा रहे आज के विज्ञान साहित्य की चाह पाने का सरल तरीका यह है कि तनिक इसके इतिहास पर नज़र डालें। ललित साहित्य में विज्ञान की छौंक सन् 1800 के आसपास लगना शुरू हो गई थी। साहित्य में इस प्रकार की बातों का उल्लेख मिलता है कि जब बनारस के लोगों को पता लगा कि फिरंगियों की "आग से चलने वाली नाव" कलकत्ते से बनारस आ रही है तो गंगा किनारे तमाशाइयों की भीड़ जमा हो गई। जनवरी की सर्दियों में भी लोग गले तक पानी में उतर गये और "डायना" नाम की इस नाव को देखने के चक्कर में कई डूब गए। जहाँ तक बाकायदा पुस्तक लिखने-लिखाने की बात है तो "वैज्ञानिक" पत्रिका से संपादक डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल के अनुसार पं. कुंज बिहारी लाल की आगरा से छपी पुस्तक "लघु त्रिकोणमिति" संभवतः हिंदी की प्रथम विज्ञान पुस्तक थी। यह पुस्तक सन् 1855 में छपी थी। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में कई पत्र-पत्रिकाएं छपना शुरू हुईं जिन्होंने थोड़ा-बहुत विज्ञान का भी समावेश किया। सन् 1867 से सन् 1900 के बीच हिंदी का परचम ऊँचा उठाने वाले ये पत्र थे - "कवि वचन सुधा", "हिंदी प्रदीप", "आनंद कादम्बिनी", "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" तथा "सरस्वती" वगैरह। उन्नीसवीं सदी का यह समय हिंदी में विज्ञान प्रसार के लिए इस काल-खंड में शिवप्रसाद सितारेहिंद, मुंशी रतन लाल, सर सैयद अहमद, पंडित सुधाकर द्विवेदी जैसे कई रहनुमाओं के नाम लिए जा सकते हैं पर इनमें सर्वोच्च योगदान भारतेन्दु हरिश्चंद्र का है। भारतेन्दु ब्रजभाषा के अपने मनोरम काव्य से तो विश्व-विख्यात हैं ही, अपने वैज्ञानिक मिज़ाज के लिए भी जाने जाते हैं। अपनी साप्ताहिक "कवि वचन सुधा" में वे नियम से विज्ञान संबंधी खोजों का विवरण छापते थे। बनारस के रहने वाले भारतेन्दु भारतीय विज्ञान और हिंदी के आदर्श प्रतीक बन गए। "हिस्ट्री ऑफ हिंदी लंग्वेज एंड लिटरेचर" पुस्तक के लेखक श्री आर. एल. हांडा का कहना है कि रूस के सेंट पीटर्सबर्ग से भारतेन्दु को पत्र आया था कि "एक सीनेटर रॉबिंस्की रूसी वैज्ञानिक दल के साथ भारत आ रहे हैं और आपके वैज्ञानिक अनुभवों का लाभ चाहते हैं।" सबसे बड़ी बात तो यह थी कि भारतेन्दु अंधविश्वासों, कुरीतियों, सती प्रथा और तर्कहीन कर्मकांडों के खिलाफ थे। अपने छोटे से जीवनकाल में भारतेन्दु हिंदी और विज्ञान-प्रसार के कारण जन-जन के प्रिय और रहनुमा बन गए थे।

फिर 20 वीं सदी शुरू हुई। सन् 1902 में स्वामी विवेकानंद ने गुरूकुल कांगड़ी में विद्यालय खोला तो हिंदी में उन्हें वैज्ञानिक साहित्य की जरूरत हुई। इसके निर्माण का कार्य कराने की जिम्मेदारी महेश चरण सिन्हा को सौंपी गई। इस प्रकार पुस्तक लेखन, शब्दावलि निर्माण, सही वैज्ञानिक भाषा के उपयोग आदि कई पहलुओं पर सार्थक कार्य शुरू हो गया। फिर अगली विशाल घटना थी प्रयाग में सन् 1913 में विज्ञान परिषद की स्थापना जिसने 1915 से विज्ञान को पूरी तरह समर्पित पत्रिका "विज्ञान" का प्रकाशन शुरू किया। यह पत्रिका आज भी छप रही है। विज्ञान लेखकों का मानना है कि 20 वीं सदी के पहले दो दशकों के दौरान लेखकों में जो उत्साह था, वह इस सदी के हिंदी विज्ञान साहित्य की आधारशिला बना जिस पर विज्ञानमय हिंदी का आज का विशाल भवन खड़ा हुआ।

सन् 1900 से 1965 तक के कालखंड में विज्ञान लेखन का ढेरों कार्य हुआ। इसमें सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओं व लेखकों-प्राध्यापकों-वैज्ञानिकों ने मिलजुल कर हिंदी व देशप्रेम के कारण अपना समय

तो दिया ही, अपना पैसा भी लगाया। नतीजा ये कि इंटरमीडियेट तक की पाठ्यपुस्तकों के अलावा पर्याप्त विज्ञान-साहित्य भी तैयार हुआ। इस कालखंड को हिंदी विज्ञान साहित्य का हम प्रस्फुटन काल कहेंगे। डॉ. सत्य प्रकाश, डॉ. नंद लाल सिंह जैसे लेखकों तथा डॉ. रघुवीर के अंग्रेजी-हिंदी कोष ने साहित्य में चार चांद जड़े।

सन् 1966-67 में मुंबई के भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के वैज्ञानिकों ने एक विलक्षण संस्था की स्थापना की जिसे ''हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद'' नाम दिया। इसके निर्माण के साथ विज्ञान-साहित्य का समूचा परिदृश्य ही बदल गया। परमाणु-विज्ञान, कंप्यूटर्स, भूकंप विज्ञान, लेसर विज्ञान, अंतरिक्ष-विज्ञान जैसे अत्यंत उन्नत क्षेत्रों में इन वैज्ञानिकों ने शब्दावलियां तैयार कीं, लेख लिखे, अनुवाद कार्य किए, भारतीय वैज्ञानिकों पर पुस्तकें लिखीं व कई संगोष्ठियों का आयोजन किया। मज़े की बात तो ये है कि इस संस्था के वैज्ञानिकों ने इस कार्य के लिए तरह-तरह से अपना हिंदी ज्ञान बढ़ाया। दूसरी मजेदार बात यह कि संस्था के अध्यक्ष कोई उत्तर भारतीय न थे, वे एक दक्षिण भारतीय थे, नाम है डॉ. वेंकटेश अनप्पा कामथ। यह संस्था आज भी सक्रिय है और ''वैज्ञानिक'' नाम की इसकी सबसे शानदार त्रैमासिक पत्रिका आज भी निकल रही है, जिसका नाम सुझाया था महान हिंदी कवि डॉ. रामधारी सिंह दिनकर ने। इस पत्रिका की लोकप्रियता का ये आलम है कि शीर्षस्थ वैज्ञानिक इसके लिए लिखते हैं और 1974 में प्रथम परमाणु विस्फोट के बाद बालकवि बैरागी जैसे प्रख्यात कवि ने इस पत्रिका के लिए वैज्ञानिकों का अभिनंदन करते हुए एक भावमय कविता भेजी। इस प्रकार हम देखते हैं कि 1965 के बाद हिंदी के विज्ञान साहित्य का उत्थान काल शुरू होता है। इस बीच विश्वविद्यालयों में हिंदी माध्यम से पढ़ाने की सिफ़ारिशें, पारिभाषिक शब्दावलि आयोग का गठन और कई प्रांतों में हिंदी ग्रंथ अकादमियों की स्थापना वगैरह के सुप्रयास 1965 से लेकर आज तक के कालखंड के प्रबल साक्षी हैं। और हाँ, 1989 में भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग ने एक स्वायत्त संस्था के रूप में ''विज्ञान प्रसार'' नामक संस्था का निर्माण किया जिसने इस बीच विज्ञान लोकप्रियकरण के प्रशंसनीय प्रयास किए हैं।

21 वीं सदी के शुरू में आज हम देखते हैं कि भारतीय विज्ञान और हिंदी दोनों ही मज़बूत और सशक्त हैं। हमें आशा करनी चाहिए कि हिंदी में विज्ञान साहित्य का अब परिपक्वता काल शुरू होगा। कई लोगों को लगता होगा कि इंटरनेट और कंप्यूटरों के इस ज़माने में जब अनेक भाषाएं अंग्रेजी का मुकाबला नहीं कर पा रहीं, तो ऐसे में हिंदी आगे कैसे बढ़ पाएगी? इसका जवाब यह है कि जब मुगलिया और अंग्रेज सल्तनतें हिंदी का बाल बाँका नहीं कर पाईं, तो फिर हम किसी भी अनिष्ट की अब आशंका क्यों करें? हिदी विज्ञान साहित्य का इतिहास इस बात का सबूत है कि हिंदी राजभाषा भी है और राष्ट्रभाषा भी। जी हाँ, हिंदी की रसमय बेल को हमेशा भारतीयों ने अपने प्यार और मेहनत से सींचे रखा है अतः इसका विस्तार सुनिश्चित है। 2 फरवरी 1835 के दिन अंग्रेज मैकाले ने अंग्रेजी की वकालत करते हुए कहा था- ''अगर हम भारतीय भाषा को अपनाएं तो क्या हम ऐसा इतिहास पढ़ायेंगे जिसमें 30 फुट ऊँचे और 30 हजार वर्ष तक शासन करने वाले राजाओं का वर्णन होगा? क्या ऐसा भगोल पढ़ाएंगे जिसमें मक्खन और दूध के समुद्रों की दास्तान होगी?'' मित्रा, इस बीच न जाने मैकाले जैसी कितनी ही चट्टानों को रौंदते-तोड़ते हिंदी की गंगा निरंतर बहती रही। हिंदी की तरफ़ से हर भारतीय आज भी निःशंक कह सकता है :

''हमको मिटा सके ये ज़माने में दम नहीं,
हमसे ज़माना खुद है, ज़माने से हम नहीं''

❖❖❖

विज्ञान कथा

कल्पवृक्ष और ठंडी धरती

राजकुमार जैन

210, अध्विका फैंटाशिया एपार्टमेन्ट, 6वां क्रॉस, पापम्मा ले-आऊट, कागदासपुरा, सी. वी. रामन नगर, बैंगलोर - 560 093

(कार्बन डाईऑक्साइड की वातावरण में बढ़ती मात्रा से परेशान डॉ. शर्मा ने एक नये वृक्ष की कल्पना कर डाली। जब यह वृक्ष, कल्पना से उतर कर वास्तविकता में आया, तो पृथ्वी से कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा तेजी से घट गई। पृथ्वी से इस कारण, उसके गर्म होने की आशंका मिट गई किन्तु जल्दी ही एक नयी समस्या आ खड़ी हुई। क्या पृथ्वी ठंडी हो जायेगी? डॉ. शर्मा यह सोचकर ही ठंड से कांपने लगते हैं।)

डॉ. शर्मा पिछले कुछ दिनों से बहुत परेशान थे। उनकी परेशानी का कारण, वैज्ञानिकों की पृथ्वी के वातावरण के बदलने के बारे में दी गई चेतावनी थी। डॉ. शर्मा भी उनकी इस बात से सहमत थे कि औसतन, आशा से कहीं ज्यादा तेजी से पृथ्वी गर्म होती जा रही है। यदि यही सब चलता रहा तो पृथ्वी से जीवन समाप्त भी हो सकता है। भुखमरी, बाढ़ जैसी अनेक विपदाओं की चेतावनी बार-बार दी जा रही थी। यह जानते हुए भी कि यह सब उनके जीवनकाल में नहीं होने वाला, फिर भी यह सोचकर ही उनकी नींद उड़ गई थी।

डॉ. शर्मा एक कृषि वैज्ञानिक हैं। इस कारण भी उनका सोचना अन्य वैज्ञानिकों से भिन्न है। वे हर समस्या का हल प्रकृति में ही ढूंढने का प्रयत्न करते हैं। उन्हें विश्वास है कि भविष्य में प्रकृति ही, एक ऐसे वृक्ष की उत्पत्ति करेगी जो वर्तमान वृक्षों की अपेक्षा कई गुना कार्बन डाईऑक्साइड का उपयोग करेगा। तब यह समस्या अपने आप ही हल हो जायेगी। वैज्ञानिक होने के नाते, वे प्रकृति के उसी कार्य को तेजी से करने में विश्वास रखते हैं। उनके विचार में, वे एक ऐसे वृक्ष की कल्पना मात्र ही नहीं कर रहे थे, उस पर कार्य भी कर रहे थे। वे एक ऐसे बीज की किस्म पैदा करने में जुटे थे, जो अपने भोजन को उत्पन्न करने में, वर्तमान वृक्षों से कई गुना कार्बन डाईऑक्साइड ले और ऑक्सीजन उत्पन्न करें।

डॉ. शर्मा ने पिछले कुछ दिनों में बीज की जिन नयी किस्मों पर कार्य किया था, वे बड़ी ही उत्साहवर्धक थीं। इस बार जो मूल परिवर्तन उन्होंने किये थे, वे निश्चित रूप से उन्हें सफलता प्रदान करायेंगे, ऐसा उनका विश्वास था। यही सब सोचते-सोचते वे अपनी फुलवारी में ताजी हवा का आनंद उठा रहे थे। इसी फुलवारी में वे बीज भी अंकुरित हो रहे थे, जिन पर डॉ. शर्मा की सारी सफलता और पृथ्वी की समस्या का हल छिपा था।

डॉ. शर्मा अपनी आरामकुर्सी पर आराम करते-करते ही कब कल्पना लोक में चले गये, उन्हें पता ही नहीं चला। वे क्या देखते हैं कि उनका नया बीज अंकुरित होकर, एक नये वृक्ष में परिवर्तित हो गया है। उनकी फुलवारी का वातावरण भी पूरी तरह बदल गया है। हवा कुछ ज्यादा ही ताजी महसूस हो रही है। उन्हें लगा कि इन सब परिवर्तनों के पीछे उनके नये वृक्ष का ही हाथ है। यह सोचते ही वे घबड़ाकर उठ बैठते हैं। उन्हें लगता है कि वास्तव में वातावरण बड़ा ही ताजा और सुहावना है। और यह सब उनके इसी नये वृक्ष का कमाल है। अपनी बात की पुष्टि के लिए वे अपनी फुलवारी और वृक्ष के आसपास की वायु का विश्लेषण करते हैं। वास्तव में उसमें ऑक्सीजन की मात्रा औसत से कहीं ज्यादा और कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा कम पाई जाती है।

डॉ. शर्मा गमले में उगे उसी प्रकार के पौधे को नियंत्रण कक्ष में ले जाकर पुनः परीक्षण करते हैं। नियंत्रण कक्ष में पौधे को रखने के कुछ समय बाद ही, वहाँ के वातावरण में आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तन होता है। कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा पिछले अनेक परीक्षणों की तुलना में कहीं बहुत ही कम पाई जाती है।

डॉ. शर्मा ने जब यह बात अपने अन्य सहयोगी वैज्ञानिकों को बतायी तो किसी को भी उन पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने अपने संदेहों को स्पष्टरूप से उजागर कर दिया। बात आगे बढ़े इससे पहले ही, विभागाध्यक्ष ने एक जांच समिति की घोषणा कर दी। समिति ने सारी प्रक्रिया को प्रारंभ से जांचा और पुनः परीक्षण किया। समिति को स्वयं आश्चर्य हुआ जब उसने पाया कि साधारण पौधे की अपेक्षा, यह नया पौधा वास्तव में अपनी प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया में कई गुनी ज्यादा कार्बन डाईऑक्साइड का उपयोग करता है। इस प्रकार यह एक

पौधा, कई पौधों का कार्य कर सकता है। औसतन आठ पौधों के बराबर, यह एक अकेला पौधा वातावरण को प्रभावित कर रहा था।

जांच समिति की मुहर लगते ही, यह खबर सारी दुनिया में कुछ ही क्षणों में फैल गयी। संयुक्त राष्ट्र संघ की वातावरण नियंत्रक समिति ने अपने एक विशेषज्ञ दल को भारत भेजा। इस विशेषज्ञ दल ने सारे तथ्यों की जाँच की, आवश्यक परीक्षण, विश्लेषण किये और महासचिव को अपनी रिपोर्ट में बताया कि प्रारंभिक जांच में यह सब सही पाया गया है। जांच दल ने यह भी कहा कि इस प्रकार के पौधों, वृक्षों को परीक्षण के तौर पर विश्वभर में लगाना चाहिए।

भारत सरकार ने भी कुछ प्रदूषण वाले चौराहों के आसपास इन वृक्षों को लगानी की व्यवस्था की। यातायात नियंत्रक ने इन चौराहों पर अपने ऑक्सीजन मास्क को निकालने तक की हिम्मत जुटाली। यह देख डॉ. शर्मा की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उनका चेहरा खुशी से चमक उठा।

जल्दी ही विश्वभर से इन पौधों की मांग होने लगी। कुछ ही वर्षों में, पृथ्वी के वायुमंडल में आशातीत सुधार दिखाई पड़ा। प्रदूषण वाले शहरों में, प्रदूषण का स्तर कम होने लगा। एक तरफ यह सब चल रहा था। वहाँ एक और वैज्ञानिकों के दल ने कार्बन डाईऑक्साइड की घटती मात्रा से आनेवाले खतरों की तरफ ध्यान आकर्षित किया।

वैज्ञानिकों का कहना था कि यदि पौधों की फसल पर नियंत्रण नहीं किया गया, तो कार्बन डाईऑक्साइड का प्रतिशत इस स्तर तक गिर सकता है कि भविष्य में हमारी पृथ्वी ठंडी होने लगे। इस समय के बाद, पुनः पृथ्वी पर, हिमयुग आने की चेतावनी भी उन्होंने दे डाली।

यह सोचते ही डॉ. शर्मा ठंड से कांपने लगे। उनकी नींद अचानक ही टूट गई। वे क्या देखते हैं कि सूर्य ढल चुका है और दिसंबर की ठंडक अपने पैर फैला चुकी है। वे पृथ्वी को ठंडा होने से नहीं बल्कि दिसंबर की ठंडक से कांप रहे थे। उनकी फुलवारी का वातावरण वैसा ही था। प्रदूषण अब भी वैसा ही था। फुलवारी में डाले गये बीजों से अभी अंकुर आना शेष था। वे जल्दी से अपने को समेटकर, अंदर गर्म वातावरण में जा छिपे।

❖❖❖

कुछ विस्मयकारी गणितीय जानकारी

(अ)

1 x 8 + 1 = 9
12 x 8 + 2 = 98
123 x 8 + 3 = 987
1234 x 8 + 4 = 9876
12345 x 8 + 5 = 98765
123456 x 8 + 6 = 987654
1234567 x 8 + 7 = 9876543
12345678 x 8 + 8 = 98765432
123456789 x 8 + 9 = 987654321

(ब)

1 x 9 + 2 = 11
12 x 9 + 3 = 111
123 x 9 + 4 = 1111
1234 x 9 + 5 = 11111
12345 x 9 + 6 = 111111
123456 x 9 + 7 = 1111111
1234567 x 9 + 8 = 11111111
12345678 x 9 + 9 = 111111111
123456789 x 9 + 10 = 1111111111

(स)

9 x 9 + 7 = 88
98 x 9 + 6 = 888
987 x 9 + 5 = 8888
9876 x 9 + 4 = 88888
98765 x 9 + 3 = 888888
987654 x 9 + 2 = 8888888
9876543 x 9 + 1 = 88888888
98765432 x 9 + 0 = 888888888

(द)

1 x 1 = 1
11 x 11 = 121
111 x 111 = 12321
1111 x 1111 = 1234321
11111 x 11111 = 123454321
111111 x 11111 = 12345654321
1111111 x 1111111 = 1234567654321
11111111 x 11111111 = 123456787654321
111111111 x 111111111 = 12345678987654321

विज्ञान समाचार

भा. प. अ. केंद्र से

अ. प्रौद्योगिकी हस्तांतरण

1. 8 किलोग्राम पेलोड सक्षम परिचालकों का निर्माण :

10 अक्तूबर, 2008 को हिंदुस्तान मशीन टूल्स लि. (HMT) और भा. प. अ. केंद्र (BARC) के मध्य एक समझौता-ज्ञापन हुआ। इसके अनुसार बंगालुरू में एचएमटी की मशीन टूल्स फैक्टरी में 8-किग्रा. पेलोड सक्षम परिचालक की 60 भुजाएं निर्मित की जायेंगी। पारिचालक से यंत्रों द्वारा रेडिओ सक्रिय कक्षों (Hot Cells) में (ग्लोव बॉक्स में हाथ डालकर) पदार्थों का सुदूर हस्तन (रिमोट हैंडलिंग) किया जाता है। इन भुजाओं का उपयोग अपशिष्ट प्रबंधन, पुनःसंसाधन व रेडियो रसायनिकी सुविधाओं की प्रयोगशालाओं के रेडिओ सक्रिय कक्षों में किया जायेगा।

इस यंत्र के आदि प्रारूप का विकास भा.प.अ. केंद्र और एच.एम.टी. ने संयुक्त रूप से किया है। सुदूर-हस्तन की वे सभी विशिष्टताएं, जो इस श्रेणी के परिचालकों में होनी चाहिए, उसमें समाविष्ट हैं। इसकी कम वजनी, श्रम-दक्षी संरचना, इसकी दूर तक पहुंच, सभी स्थितियों में पूर्ण संतुलन तथा विधुत सूचीकरण का न होना, इसे अत्यंत उपयोगी बनाता है तथा आशा है यह चालक-कर्मियों को भी भायेगा।

2. अनुकारित रिएक्टर-परिस्थितियों में प्रतिबल संक्षारण दरार अध्ययन :

15 अक्तूबर, 2008 को जादवपुर विश्वविद्यालय, कोलकाता और भा.प.अ. केंद्र के पदार्थ विज्ञान प्रभाग के मध्य एक समझौता-ज्ञापन हुआ। यह समझौता ग्यारहवीं योजना के अंतर्गत किया गया है। इस समझौते का शीर्षक है : वैज्ञानिक सहभागिता में पुनः परिसंचारी परीक्षण लूप प्रणाली का स्थापन व नाभिकीय संयंत्रों के अनुकारित (सिमुलेटेड) वातावरण में ऑस्टेनिटिक स्टेनलेस इस्पात में होने वाले प्रतिबल संक्षारण (स्ट्रेस कोरोजन) क्रेकिंग का अध्ययन।

इस समझौते के अंतर्गत (अ) पुनः परिसंचारी लूप सुविधा स्थापित की जायेगी, जो 280°-320°सें. और 8-12 मैगापॉस्कल दाब की परिस्थिति में कार्य करेगी। लूप में बहने वाला जल अत्यंत शुद्ध होगा (चालकता ~ 0.005 मिलीसिमेन प्रति सेमी.) तथा उसमें घुली ऑक्सीजन की मात्रा नियंत्रित रखी जा सकेगी। (ब) प्रतिबल संक्षारण द्वारा पदार्थ में होने वाली दरारों का अध्ययन किया जायेगा। अनुकारित रिएक्टर वातावरण में, पदार्थों में दरार का प्रारंभ होना, उससे पूर्व पदार्थ की अवस्था आदि का अध्ययन किया जायेगा। इस हेतु चयनित ऑस्टेनिटिक स्टेनलेस इस्पात ग्रेडों (SS 304L / SS 304LN / SS 316L / SS 316N) से क्रेवाइस बेंट बीम (Crevice Bent Beam - CBB) प्रतिदर्श बनाये जायेंगे। इन प्रतिदर्शों का विभिन्न शीत / ताप की प्रक्रिया से संवेदनीकरण किया जायेगा। दरार प्रारंभ होने की विशिष्ट जगहों, दरारों की आकारिकी और प्रतिबल संक्षारण दरारों की विशेषतः उनकी प्रकृति आदि के बारे में दरारों की गहराई नापकर जानकारी प्राप्त की जायेगी। (स) स्केनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप (SEM) और परमाण्विक बल सूक्ष्मदर्शी (AFM) से निरीक्षण कर, प्रतिबल-संक्षारण दरार प्रारंभ होने से पूर्व अवस्था को चिह्नित करना शामिल है। समझौते का कार्यकाल चार वर्ष है। अभी प्रतिबल संक्षारण दरार वृद्धि दर का मापन किया जा रहा है।

3. नाभिकीय कृषि एवं खाद्य किरणन :

कृषि के क्षेत्र में दो नयी ट्रांबे फसल किस्में; टीजी-39 (ट्रांबे-बीकानेर मूंगफली) राजस्थान में खेती के लिए अधिसूचित किया गया है एवं टी.जी-51 को पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, बिहार एवं उत्तरी पूर्व राज्यों के लिए अधिसूचित किया गया है। उसके साथ कृषि मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा वाणिज्यिक खेती के लिए अधिसूचित ट्रांबे-फसल किस्मों की कुल संख्या 37 हो गयी है।

इस वर्ष 2008 में, 19 नये निसर्गऋण बायोगैस संयंत्रों को स्थापित किया गया, अब इनकी कुल संख्या 37 हो गयी है।

तीन अंतर्राष्ट्रीय पेटेंट्स फाइल किये गये हैं और एक राष्ट्रीय पेटेंट लिया गया है। महाराष्ट्र में तीन नयी आकृतियां स्थापित की गई हैं, अब भारत में कुल 8 आकृतियां कार्यरत हैं। इन आकृति नोडों के चारों और 100 से अधिक क्षेत्रों में दूसरी बार भा.अ.प. केंद्र की नवीन बीज किस्में बोयी गयी हैं।

कृषि उत्पादन संरक्षण केंद्र (कृषक – KRUSHAK) - लासगांव में (1997-2000) में खाद्य तकनीकी प्रभाग भा.प.अ. केंद्र द्वारा स्थापित किया था। यहाँ मुख्यतः प्याज को किरणित कर, भंडारण हेतु उपचारित किया जाता था। सन् 2007, अप्रैल में अमरीका के USDA इंस्पेक्टरों द्वारा पास कर दिये जाने पर, हापुस आमों को किरणित कर अमरीका निर्यात किया गया। पिछले साल लगभग 157 मीट्रिक टन आम अमरीका निर्यात किया गया। कृषक, संसार का पहला कोबाल्ट-60 गामा किरणन संयंत्र है, जो अमरीका से बाहर है और जिसे USDA-APHIS ने आमों को किरणित करने के योग्य पाया है।

ब. विकास कार्यक्रम

1. विद्युत-अपघट्य ऋणाग्र दीप्ति विसर्जन (ELCAD) विधि का विकास :

तत्त्वों के लेश और परालेश स्तर पर विश्लेषण हेतु विद्युत-अपघट्य ऋणाग्र दीप्ति विसर्जन परमाणु उत्सर्जन स्पेक्ट्रममापी विधि का विकास हैदराबाद स्थित सी सी सी एम (CCCM) यूनिट में किया गया है। इस विधि की, तत्त्व घटकों-विशेषतः घोल प्रतिदर्श में धातुओं को मापने की सुग्राहिता, विभिन्न धातुओं के लिए 5 से 50 अंश प्रति अरब (ppb) है। इसको मानक विधि बनाने के प्रयास अभी जारी हैं। प्रक्रिया के विभिन्न चरणों की क्रियाओं, विश्लेष्य उत्सर्जन पर चालक-प्रभाव आदि का अध्ययन किया जा रहा है ताकि उस विधि को और संवेदी बनाया जा सके। यह तरीका विशेषतः रेडियो सक्रिय प्रतिदर्शों के अनुकुल है; क्योंकि विद्युत-सेल को ग्लोव-बॉक्स में रखकर, उत्सर्जित किरणों को प्रकाशीय तंतुओं द्वारा स्पेक्ट्रोमीटर तक पहुंचाना संभव है।

इस विधि का दूसरा नाम दीप्ति विसर्जन विद्युत विश्लेषण (Glow Discharge Electrolysis, GDE) भी है। यह एक विशिष्ट विद्युत रसायनिकी तकनीक है, जिसमें प्रतिदर्श घोल को ऋणाग्र बनाया जाता है। धात्वीय धनाग्र और घोल-ऋणाग्र के मध्य उच्च विभव लगाकर विसर्जन उत्पन्न किया जाता है। धातुओं की, घोल में, सांद्रता मापने की ELCAD एक व्यवहार्य विश्लेषक सतत् (Online) मॉनीटरन विधि बन गयी है। यद्यपि अभी कोई व्यवसायिक यंत्र इसके लिए उपलब्ध नहीं है।

मंहगी आईसीपी-एमएस (ICP-MS) व आईसीपी-एईएस (ICP-AES) विधियों की तुलना में यह कई बातों में बेहतर है, यद्यपि उतनी संवेदी नहीं है। इसके लाभ हैं : (1) कम मंहगी, (2) कम पावर खपत ~ 75 वॉट, (3) वायवीय प्लाज्मा (निर्वात की आवश्यकता नहीं), (4) आर्गन गैर नहीं लगती, (5) 10 अंश प्रति अरब की संसूचन सीमा। इस विधि से प्राप्त कुछ धातुओं की संसूचन सीमा निम्न हैं :

Ca - 16, Cu - 12, Cd - 4, Pb - 48, Hg - 15 अंश प्रति अरब।

2. मोबाइल आधारित टेली-ईसीजी :

टेलीमेडिसिन की सहायता से चिकित्सक या विशेषज्ञ, एक स्थल पर रहकर, दूरस्थ स्थित रोगियों की जांच कर सकता है व उन्हें स्वास्थ्य संबंधी निर्देश दे सकता है या फिर दूर स्थित अन्य विशेषज्ञों या डाक्टरों से सलाह मशविरा कर सकता है। यद्यपि रोगी और डॉक्टर के प्रत्यक्ष साक्षात्कार व सलाह का कोई विकल्प नहीं है, पर फिर भी कई मामलों में टेलीमेडिसन का प्रयोग लाभप्रद व सुविधाजनक होता है। टेलीमेडिसन की संकल्पना करीब 30 वर्ष पूर्व, दूरभाष व धीमी स्केन बिंब-प्रेषण मशीनों के आने पर शुरू हुई थी। इस विधि में रोगी के बायोमेडिकल-संकेतों को स्थलीय-दूरभाष द्वारा (जैसे PSTN - प्लबिक स्विच टेलीफोनी नेटवर्क से या ISDN - इंटिग्रेटेड सर्विसेज़ डिजिटल नेट वर्क से) गंतव्य स्थल पर भेजा जाता है। इसके उपयोग पहले सिर्फ निश्चित स्थलों, जहाँ पारंपारिक दूरभाष हैं, तक ही सीमित थे। अतः उपग्रह-संचार का उपयोग कर वायरलेस टेलीमेडिसिन विकसित करने के प्रयास चल रहे हैं। इसके लिए कीमती यंत्र, निश्चित परिपथ और कुशल व्यक्ति चाहिए। इसी प्रकार अस्पताल में प्रयुक्त वायरलेस वाले स्थानीय क्षेत्रीय नेट वर्क्स (LANS) और कम परास की रेडियो आवृत्तियां (RF) के ट्रांस रिसीवरों का प्रयोग भी आवश्यक होने पर चलायमान (एंबुलेंस में) स्थितियों में नहीं किया जा सकता है। विश्वभर में संचार के लिए मोबाइल सेल्यूलर नेटवर्क जैसे वैश्विक प्रणाली मोबाइल (GSM) या उससे अच्छे तृतीय जनरेशन नेटवर्क (3G - network) चाहिए।

इनका प्रयोग कर ग्रामीण क्षेत्र के मरीज़ भी मोबाइल फोन द्वारा नियमित नेमका जांच की सुविधा बिना शहरी अस्पतालों में गये, पा सकते हैं। रोगी की दैनिक निगरानी या मॉनीटरन भी इसी तरह उसके घर में रहते हुए या यात्रा के

दौरान या कार्यस्थल पर की जा सकती है।

हमारे देश का विस्तृत क्षेत्र, विभिन्न स्थलाकृति (टोपोग्राफी), करोड़ों की जनसंख्या, 2000 से अधिक जनसंख्या/प्रति डॉक्टर, और 70% जनसंख्या का अलग-ठलग गांवों में रहना, टेलीमेडिसिन को उचित व आवश्यक बना देते हैं। यद्यपि टेलीमेडिसिन चिकित्सा की सभी शाखाओं में लाभप्रद है, पर हृदय रोगियों की बढ़ती दर और उससे जुड़े खतरों के कारण यह विशेषतः हृदय-चिकित्सा में अत्यंत उपयोगी है। कई बार रोगी को गांव से निकटतम शहर तक पहुँचाने का विलंब उसके लिए घातक हो सकता है।

इन बातों को ध्यान में रखकर और चूंकि मोबाइल फोन अब काफी लोग ले पा रहे हैं; इलेक्ट्रॉनिकी प्रभाग ने, बैटरी-चालित, साथ में लेकर चलने लायक टेली-ईसीजी जो मोबाइल नेटवर्क पर कार्य करता है, विकसित किया है।

ईसीजी (विद्युत हृदय-आलेख) द्वारा रोग को सरलता से ज्ञात किया जा सकता है। इसके संकेतों से हृदय की कई बीमारियों का पता लगता है। इस के द्वारा गंभीर रोगियों का आसानी से मॉनीटरन होता है। अतः कई प्रकार की ईसीजी मशीनें देशी और विदेशी कंपनियों द्वारा बनायी जा रही हैं। विभिन्न मॉडलों में रिकार्डिंग चैनलों की विभिन्न संख्या, उनको रिकार्ड करने की स्वतंत्रता और ईसीजी संकेतों की व्याख्या की सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

नैदानिक ईसीजी मशीनों में 1, 3 या 12 चैनलों का इनपुट प्रवर्धकों को ईसीजी अंकित करने में प्रयुक्त होता है। इन सबमें रिकार्डिंग यंत्र, तापीय रिकार्डर या इंकजेट मुद्रक होते हैं जो माइक्रो-कंट्रोलर की सहायता से कार्य करते हैं। ईसीजी व्याख्या की सुविधा अभी सिर्फ आयातित मॉडलों में ही है - यहाँ निर्मित मशीनों में नहीं।

3. भा.प.अ. केंद्र में विकसित मोबाइल आधारित टेली-ईसीजी :

एक हाथ में ग्राह्य ईसीजी (HECG) है जो ब्लूटूथ से मोबाइल से जुड़ा है। HECG मरीज के ईसीजी संकेतों को (सभी 12 लीड्स से) क्रमानुसार प्राप्त कर, उन पर प्रक्रिया कर चलित टेली प्रोसेसर की मदद से प्रसारित करता है। दूसरे छोर पर, प्रचालक के पास GPRS युक्त सेल्यूलर फोन या लेपटॉप या डेस्क टॉप होता है; संकेत ग्रहण युक्ति को इनमें से किसी के द्वारा भी शुरू, प्रचालित व नियंत्रित किया जाता है। यह इन संकेतों को मनचाहे रूप में, एकत्र, ट्रांसमिट, फाइल में सुरक्षित रख सकता है। प्रत्येक मरीज का डाटा बिट मेप फाइल (bmp/png) HECG इकाई और मोबाइल/लेपटॉप में रहता है। यदि आवश्यक हो तो प्रचालक ईसीजी फाइल को GPRS नेटवर्क से विशेषज्ञ को भेजकर उसकी राय भी ले सकता है।

4. भा.प.अ. केंद्र की नयी सुविधाओं का सुदूर उद्घाटन :

30 अक्तूबर को केंद्र अपना स्थापना दिवस मनाता है। इस साल भारत के प्रधान मंत्री ने दिल्ली में ही रहकर वहाँ से ही, सुदूर रूप से केंद्र की नयी सुविधाओं का उद्घाटन किया। उद्घाटन समारोह का सभी इलेक्ट्रॉनिकी नियंत्रण केंद्रीय संकुल सभागार (सेंट्रल कॉम्पलेक्स ऑडिटोरियम), भा.प.अ. केंद्र मुंबई में स्थित था, जहाँ पर परमाणु ऊर्जा विभाग के अध्यक्ष, भा.प.अ. केंद्र के निदेशक और कई सम्मानित व्यक्ति व वैज्ञानिक उपस्थित थे।

निदेशक, भा.प.अ. केंद्र ने समारोह उद्घाटन का प्रारंभ सी सी ऑडिटोरियम से किया। इसका सजीव श्रव्य-दृश्य प्रसारण केंद्र के सभी स्थलों (उसकी इकाइयों) को व लगभग देश के पंद्रह स्थलों पर स्थित परमाणु ऊर्जा विभाग की इकाइयों को एक साथ किया गया। यह सब भा.प.अ. केंद्र के कंप्यूटर प्रभाग द्वारा अभिकल्पित जटिल बहुमाध्य-संचार प्रणाली द्वारा किया गया था। इसमें बहुस्थलीय वीडियो सम्मेलन प्रणाली, सजीव दृश्य प्रसारण प्रणाली और सभी आवश्यक, श्रव्य-दृश्य संबंधी यंत्र आते हैं। प्रधान मंत्री ने अपने ऑफिस में श्रव्य-दृश्य प्रणाली का प्रयोग कर इलेक्ट्रॉनिकी पर्दे को उठाया।

ये उदघाटित इकाईयां इस प्रकार है :

1) हॉट सेल सुविधा
2) क्रांतिक सुविधा : भा.प.अ. केंद्र मुंबई
3) नया ट्रेनिंग स्कूल, अणुशक्ति नगर, मुंबई
4) इलेक्ट्रॉन किरण पुंज केंद्र, नवी मुंबई
5) एन.जी.जी.पी., कल्पाक्कम
6) बार्ज (बजरे) पर स्थित निर्लवणीकरण संयंत्र, कल्पाक्कम

संकलन - **डॉ. कैलाश चंद भल्ला**
12, गीतांजली, प्लॉट नं.52, सेक्टर-17,
वाशी, नयी मुंबई - 400 705.

अन्य विज्ञान समाचार

1. जुड़वाँ बच्चों का गाँव भारत में गंगा किनारे

इलाहाबाद जिले में नगर से 60 किमी. दूर गंगा नदी के किनारे स्थित गाँव 'मुहम्मदपुर उमरी' एकाएक अंतर्राष्ट्रीय समाचार में तब आ गया जब यह पता चला कि उस गाँव में से हर दो परिवार में से एक में जुड़वा बच्चे पैदा होते हैं। एक-एक परिवार में एक, दो, तीन और चार-चार जुड़वाँ बच्चे पैदा हो चुके हैं। यदि आप उस गाँव में जायें तो आप यह पायेंगे जैसे आप जगह-जगह फिल्मों के सेटों पर आ गये हों। जुड़वा बच्चे आपस में हूबहू इतने मिलते हैं कि उनमें अन्तर जान पाना बढ़ा कठिन होता है। चेहरा, मोहरा, रंग, कद, काठी एवं व्यवहार इस कदर मिलते हैं कि अक्ल हैरान हो जाये। एक-एक परिवार में जहाँ तीन-तीन या चार-चार जोड़े हों वहाँ न केवल पड़ोसी बल्कि माँ-बाप तक उन्हें पहचानने में चूक जाते हैं और किसी-किसी बच्चे को कोई और-और समझ जाते हैं। भारत में कई वैज्ञानिक संस्थानों के वैज्ञानिक उस गाँव का दौरा कर चुके हैं। इस असाधारण बात के कारण खोजने। उस गाँव की मिट्टी अति उपजाऊ है। गाँव के सभी परिवार मुसलमान हैं और लगभग सभी घरों में बेटों या बेटियों के विवाह आपस के रिश्तेदारों में हुए हैं पर स्थानीय लोग दूसरे पास के गाँवों में भी ऐसा होने के बावजूद जुड़वाँ बच्चे न पैदा होने का उदाहरण देकर इस अभिधारणा को 'कारण' मानने को रद्द करते हैं। हैदराबाद का एक वैज्ञानिक संस्थान वहाँ के पानी, मिट्टी, घास फूस, अनाज, तरकारियों, लोगों के रक्त आदि के नमूने चार वर्ष पूर्व ले गया पर कोई निष्कर्ष आज तक नहीं निकाल पाया। विश्व के अनेक स्थानों के वैज्ञानिक उस स्थान का दौरा कर चुके हैं। सभी जुड़वाँ बच्चे हर चीज़ों में सामान्य बच्चों जैसे पाये गये हैं। अब तक उनकी आयु कुछ महीनों से लेकर बारह वर्ष तक की हैं। निश्चित रूप से जुड़वाँ बच्चों का गाँव 'मुहम्मदपुर उमरी, जिला इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत' जीव विज्ञान के लिए एक बड़ा चैलेंज हैं।

2. दो कूबड़ों वाला विचित्र ऊँट लुप्त होने की कगार पर

लेह (आबादी एक लाख) से 150 किमी. उत्तर में एक कस्बा "न्यूब्रा" है जहाँ दो कूबड़ वाले ऊँट लोग पालते हैं जिन्हें अंग्रेजी में बैक्ट्रियन कैमल (BACTRIAN CAMEL) कहते हैं। ऐसे ऊँट मंगोलिया में भी पाये जाते हैं, कई रंगों में। न्यूब्रा घाटी के ये ऊँट मंगोलियाई दो कूबड़ वाले ऊँटों से अधिक मोटे, तगड़े और सुन्दर होते हैं। वे भूरे और लाल रंग के होते हैं। उनकी गर्दनों, सिरों व शेष शरीर पर किसी-किसी के घने लम्बे बाल भी होते हैं। वे ठंड में ही रह पाते हैं और जब न्यूब्रा घाटी में हिमप्रपात होता है तब भी चल सकते हैं बशर्ते कि रास्ते पर हिम एक फुट से अधिक मोटा न हो और नर्म चूर्ण हिम हो।

ऊँट पालना और लम्बे समय तक ज़िन्दा रखना भी बड़ी समस्या है। ऊँट की सामान्य खुराक बहुत है (गर्म रेगिस्तान के ऊँट से एकदम अलग)। ज़रा सी चूक से वह बीमार हो जाता है और मर भी जाता है। वह काले हिरन (BLACK BUCK) या मारख़ोर (IBEX) की तरह संवेदनशील भी है। न्यूब्रा लगभग 20,000 की आबादी का बुद्ध बहुल क्षेत्र है जहाँ जीवन की सामान्य सुविधाओं की कमी भी है। पहले ये ऊँट वहां सैकड़ों में थे। ग्लोबल गर्मी के कारण पास के पहाड़ों में जमने वाली हिम की मात्रा में कमी के कारण मौसम में गरमाहट व सामान्य जल स्रोतों में और घास फूस की मात्रा में आयी कमी तथा अब की जलवायु का ऊँटों के लिए असहनीय हो रही है।

पर्यावरणीय, वैज्ञानिक, सामाजिक व आर्थिक समस्याओं और अरुचि के कारण इस ऊँट की प्रजाति भीषण खतरे में है। अब केवल 50 ऊँट बचे हुए हैं।

-सलाहुद्दीन अहमद
वैज्ञानिक अधिकारी
स्वास्थ्य भौतिकी प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुम्बई-400 085

3. नासा का स्वर्ण जयंती वर्ष 2008

वर्ष 2008 नासा (NASA) का स्वर्ण जयंती वर्ष है। इस स्वर्ण जयंती अवसर अर्थात 50वीं वर्षगांठ पर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक डॉ. स्टीफन हॉकिन्स ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 'हमें अंतरिक्ष क्यों जाना चाहिए?' पर वैज्ञानिक व्याख्यान दिया। उन्होंने कहा नासा के सफलतम 50 वर्ष में अंतरिक्ष विज्ञान में अदभुत प्रगति हासिल की है। अब नासा को चाँद और मंगल पर कॉलोनियां बनाने के प्रयासों में तेजी लानी चाहिए। वर्तमान में अंतरिक्ष में सरकार द्वारा जितने संसाधन खर्च किए जा रहे हैं उसमें दस गुणा बढ़ोत्तरी करना चाहिए ताकि इस परियोजना को जल्दी से जल्दी लागू किया जाए। नासा ऐसे में पूरा ध्यान अपने उस लक्ष्यों को पूरा करने में जुटा है, जिसमें चाँद और मंगल ग्रह पर घर बनाने की योजना है। इसके लिए उसकी भौगोलिक परिस्थिति का पता करने के लिए 3 वर्ष पहले ही मंगल पर एक मानवरहित यान भेजा गया था, जिसके कुछ परिणाम नासा को प्राप्त हुए हैं। उसके आधार पर वहां जीवन के लक्षण पाये गए हैं। मानव जैसा खोपड़ी आकार का चित्र भी प्राप्त होना हैरान करने वाला है। शायद यह चित्र चट्टानों का भ्रम भी हो सकता है लेकिन पानी की मौजूदगी का पता नासा ने प्राप्त किया है।

4. आपदा को भांपने वाली जैलीफिश

ज्वालामुखी, भूस्खलन, वायुमंडलीय विस्फोट, तूफान, बवण्डर, सुनामी जैसे प्राकृतिक आपदा का संबंध वस्तुतः विशिष्ट अवध्वनि से है जो 10^{-4}-20 Hz (हर्ट्ज) आवृति की ध्वनि तरंग है जो मानव के श्रवण शक्ति से बहुत कम है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि प्राकृतिक आपदा आने के पूर्व विशेष स्थितियों में अवध्वनि उत्पन्न होती है। चूँकि इसकी आवृत्ति बहुत कम (< 20 Hz) है। अतः इसकी तरंग दैर्ध्य ($\mu \times 1/\lambda$) सेकड़ों किमी. तक होती है, चूंकि पृथ्वी पर ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो अवध्वनि को दूर तक प्रवाहित होने से रोक सके। आवृत्ति कम होने से वह वातावरण में प्रवाहित होने पर बहुत कम तनुकृत होती है। वैज्ञानिकों से अनुसार प्रकृति में होने वाले परिवर्तन जो विध्वंशक होते हैं, उनके फलस्वरूप अवध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं। जो शुरू में काफी मंद होती हैं, जिसका अहसास नहीं होता है लेकिन जब तूफान या भूचाल का तांडव नृत्य चालू होता है तब यह अवध्वनि तीव्र हो जाती हैं। जैसे सुनामी आने पर समुद्र में पहले से हलचल चालू होती रहती है, जिसका आभास किसी को नहीं होता है लेकिन कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के एक दल ने एक ऐसे जीव को ढूंढ निकाला है, जो अवध्वनि तरंगों के प्रति काफी संवेदनशील रहते हैं। वह समुद्र में आने वाले तूफान, सुनामी आने से पूर्व ही बचाव.के लिए समुद्र में कहीं और चली जाती है। ताजा शोधों से यह पता लगा है कि जैलीफिश में अनुनाद गुहाएँ उसके लिए कान का काम करती हैं। कान में सुनने हेतु पत्थर होते हैं। जब पराध्वनियां उनके करीब पहुँचती हैं तो कान में पत्थर में होने से कंपन कान की दीवार के पास सुग्राही नाड़ियों को उत्तेजित कर देती हैं और इस तरह जैलीफिश को समुद्री तूफान का पता चल जाता है। इनके कान ध्वनि की आवृत्ति 10 – 12 Hz (हर्ट्ज) की अवध्वनियों के प्रति काफो संवेदनशील रहत ह, जो तूफान या सुनामी के द्वारा उत्पन्न होती हैं। यह समुद्री जीव को औरीलिया भी कहते हैं। इसकी आकृति बिना डंठल क छाते जैसी होती है। छाते से लटकता हुआ मुख और उसके चारों ओर चार पत्ती जैसी रचनाएँ होती हैं, किनारे पर आठ कटाव और स्पर्शक होत हैं।

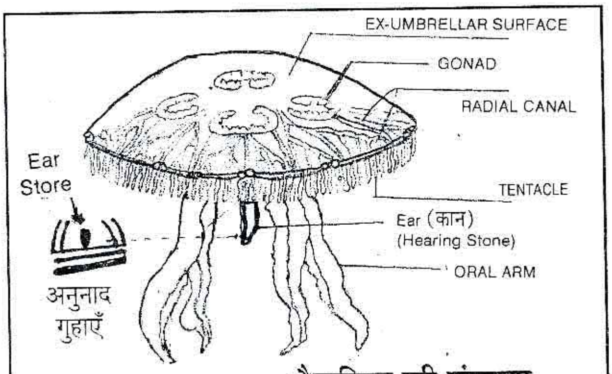

जैलफिश की संरचना

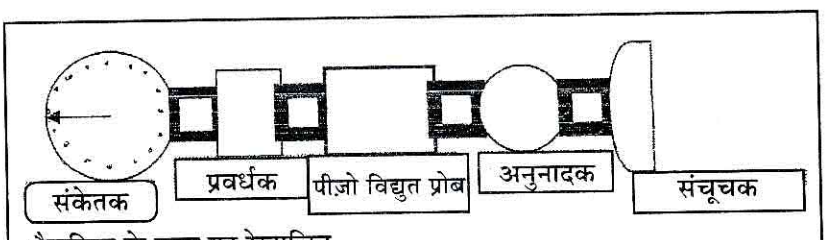

जैलफिश के कान का रेखाचित्र
सुनामी का अनुमानक (वैज्ञानिकों के अनुसार)

5. अंतर्राष्ट्रीय खगोलिकी वर्ष 2009

वर्ष 2009 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने अंतर्राष्ट्रीय खलोलिकी वर्ष घोषित किया है। वर्ष 1609 यानि 2009 से 400 वर्ष पूर्व गौलीलियो ने दूरबीन का आविष्कार खगोलीय पिंडो के अध्ययन हेतु किया था। इसमें होंस एवं लिपरशे वैज्ञानिकों का भी अहम् योगदान रहा था। गैलीलियो द्वारा बनायी गई उनकी परिष्कृत दूरबीन की 400वीं जयंती ही अंतर्राष्ट्रीय खलोलिकी वर्ष 2009 के रूप में मनाई जा रही है। दूसरी सफलता खगोल विज्ञान पर अनुसंधान पुस्तक (एस्ट्रोनॅमिया नोवा) का प्रथम सफल प्रकाशन हुआ था।

सन् 1609 में गैलीलियो को दूरबीन से सफलता तब मिली जब उन्होंने दूरबीन से चंद्रमा की तश्वीर देखी थी जिसमें चंद्रमा की सतह एवं गड्ढ़े दिखाई दिए थे। हालांकि बाद में 1610 में उन्होंने और भी शक्तिशाली दूरबीन तैयार कर शुक्र एवं बृहस्पति की कक्षा को देखा था एवं चक्कर लगाने वाले तारों को भी देखा था। यह इसलिए बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि गैलीलियो ने यह निष्कर्ष निकाला था जब उन्होंने 1613 में सूर्य की सतह पर स्थित अन्य ग्रह देखे थे। उस शक्तिशाली दूरबीन से यह पता लगा लिया कि सूर्य अपनी कक्षा पर चक्कर लगाता है जो 26 दिन के बराबर एक चक्कर होता है जिसके कारण वह सूर्य की शक्तिशाली किरणों के चक्कर में फंस गए एवं वृद्ध अवस्था (करीबन 68 वर्ष) में अंधे हो गये ऐसा वैज्ञानिकों का मानना है। लेकिन इससे कॉपरनिकस का सूर्य केंद्रित सिद्धांत प्रायोगिक रूप से सत्य हो गया।

6. भारत की अंतरिक्ष विज्ञान में शानदार सफलता :

ऐसे तो भारत के लिए वर्ष 2008 अंतरिक्ष विज्ञान में असीम सफलताओं का वर्ष रहा। साथ ही (प्रतिरक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) के 50 वर्ष पूरे हुए। रक्षा विज्ञान एवं मिसाइल के क्षेत्र में विगत 50 वर्षों में शानदार सफलता हासिल हुई। ज्ञातत्व है की डीआरडीओ की स्थापना 1958 में हुई थी। 2008 में PSLV-C-II के द्वारा भारत के प्रथम चंद्रमिशन को 22 अक्टूबर 2008 को प्रमोचित किया गया जो चन्द्रयान-I के नाम से विख्यात हुआ। यह पहला भारतीय अंतरिक्ष मिशन है जो 25 अक्टूबर 2008 को भूस्थिर कक्षा से बाहर निकला एवं अगले ही दिन डीप स्पेश अंतरिक्ष क्षेत्र में चक्कर कारते हुए 8 नवंबर 2008 को पृथ्वी के गुरूत्वीय क्षेत्र से बाहर निकलकर, चंद्रमा के गुरूत्वीय क्षेत्र में प्रवेश कर गया। इस चंद्रयान-I मिशन से भारत को चन्द्रमा की सतह को जानने का पूरा अवसर मिलेगा। यह अंतरिक्ष विज्ञान की अब तक की सबसे बड़ी कामयाबी है।

7. डीआरडीओ का स्वर्ण जयंती वर्ष 2008 का तोहफा :

इसकी सबसे बड़ी कामयाबी भारत ब्रह्मोस मिसाइल के सफल परीक्षण पर मिला। करीब 290 किमी. तक की मारक क्षमता वाले ब्रह्मोस सुपरसोनिक क्रूज मिसाइल के सतह से वार करने वाले नये संस्करण का 29 मार्च 2008 को एक महीने में दूसरी बार राजस्थान के रेगिस्तान में सफल परीक्षण किया गया। डीआरडीओ द्वारा बनाई गई यह ब्रह्मोस मिसाइल को रक्षा में शामिल किया जाएगा। यह पोखरण (राज.) फायरिंग रेंज में निशाना साधने में कामयाब रहा। यह 300 किलोग्राम तक युद्ध का विध्वंशक सामान ले सकने में सफल है।

8. अब तक का सबसे पुराना औजार :

जी हाँ! चौंकिए नहीं अब तक का सबसे पुराना औजार मलेशिया के पुरातत्वविदों ने 18 से 19 लाख वर्ष से भी अधिक पुराने पत्थर के औजार को खोज निकाला है। पुरातत्वविदों का यह मानना है कि दक्षिण-पूर्व एशिया में मानव के पूर्वजों का यह शुरूआती सबूत है। यह औजार पत्थर का कुल्हाड़ीनुमा आकार का है जो पिछले साल 2008

में नवंबर में उत्तरी पेरक प्रांत में ऐतिहासिक महत्व के स्थान लेंगगोंग शहर से प्राप्त किया गया।

पुरातत्वविदों के समूह के प्रमुख डॉ. मुख्तार सैदीन के अनुसार उन्हें अक्टूबर 08 में खबर मिली की यह औजार विश्व का सबसे पुराने औजार में से हैं जिसे परीक्षण हेतु जापान के फोरेंसिक लैब में जीवाराम में अध्ययन हेतु भेजा गया था। कार्बन डेटिंग प्रोसेस में जापान के फोरेंसिक विशेषज्ञ ने उन्हें बताया की यह औजार करीबन 18-19 लाख वर्ष का है। मलेशिया के यूनिवर्सिटी ऑफ साइंस के डॉ. सैदीन के अनुसार यह पुरापाषाण काल का है, जिस युग में लोग इन औजार को कुल्हाड़ियों के रूप में इस्तेमाल करते थे जो सीधे खड़े होकर चलने वाले शुरू के मानव किया करते थे। उस समय मानव जंगलों में रहकर जानवरों को मार कर खाया करते थे। मानव जाति के सबसे पुराना जीवाश्म इंडोनिशिया के जावा में मिले थे जो 17 लाख वर्ष पुराना है। उसके बाद दुनिया में दो सबसे पुराने जीवाश्म जार्जिया और चीन में पाए गए थे। जो 17-18 लाख वर्ष पुराना है। इसके बाद मलेशिया में पाया जाने वाला यह औजार है जो 18 लाख वर्ष से भी अधिक पुराना है।

9. अब पागलों हेतु करंट नहीं चुंबक काम आएगा :

ज्ञातव्य है कि मानसिक रोग से ग्रसित लोगों के लिए बिजली का झटका (करंट) मस्तिष्क में दिया जाता था जिसे रोगी को काफी शारिरिक यातना झेलनी पड़ती थी लेकिन अब विद्युत के झटके के बदले उन्हें चुंबकीय थैरेपी के माध्यम से मैग्नेटिक थैरेपी दी जाएगी जो न केवल दर्दरहित है बल्कि मानसिक रोग से ग्रसित व्यक्ति के लिए विद्युत शॉक से भी अधिक कारगर है। इतना विकास भारत में शुरुआती दौर में है। इसे ट्राँस क्रेनियल मैग्नेटिक स्टिमुलेशन (TMS) का नाम दिया गया है। इसमें तेजी से परिवर्तित होने वाली चुंबकीय क्षेत्र का सृजन करने वाली चुंबकीय कुंडली विद्युत तरंगें पैदा करती है। वस्तुतः चुंबकीय फ्लक्स विद्युत-धारा के सदृश होते हैं। इससे तांबे की कई वृत्ताकार चकतियाँ ली जाती है जो विद्युतरोधी तत्त्व द्वारा एक दूसरे में पृथक होती हैं। इन चकतियों के बीच छेद किए रहते हैं जिन पर जल-अवरोध पेंट किया है। इन छिद्रों से धारा प्रवाहित की जाती है। इस प्रकार के बने चुंबकीय कुंडली से करीब 10/20V के विभवांतर पर 600-800 A (एम्पियर) की धारा प्रवाहित करने पर लगभग 10^3 ऑरस्टेड तीव्रता का चुंबकीय क्षेत्र प्राप्त होता है जो मरीज पर इस्तेमाल करने के लिए काफी है। इसके फायदे और भी हैं जैसे विद्युत धारा थैरेपी में धारा को स्थापित करने एवं उसे बनाये रखने के लिए ऊर्जा का व्यय करना पड़ता है एवं यंत्र में ए.सी. (A.C.) धारा के कारण ट्रांसफॉरमर में गड़बड़ी पैदा हो जाती है, जबकि टीएमएस यंत्र जो मैग्नेटिक थैरेपी है उसमें ऊर्जा का व्यय केवल चुंबकीय परिपथ में फ्लक्स पैदा करने हेतु होता है न कि उसे बनाये रखने में।

यह यंत्र भारत में नेशनल न्यूरो रिसर्च सेंटर, गुड़गाँव में उपलब्ध है तथा बेंगलोर में राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य एवं स्नायु विज्ञान संस्थान, नयी दिल्ली एवं कुछ चुनिंदा स्वास्थ्य केंद्रों में लगाई गई है।

यह सिर्फ मानसिक रोगियों के लिए नहीं है बल्कि हड्डियों, नसों का सिकुड़ना, लकवा जैसे रोगों में विद्युत शॉक की जगह मैग्नेटिक शॉक के द्वारा हड्डियों, नसों को फिर से सक्रिय करने के लिए उसे उत्तेजित करता है। कुछ वर्ष पूर्व अमरीका के फूड एवं ड्रग प्रशासन ने मानसिक रोग से ग्रस्त मरीजों के इलाज हेतु ट्राँस क्रेनियल मैग्नेटिक स्टिमुलेशन थैरेपी का इस्तेमाल किया जाता था।

संकलन - **संजय गोस्वामी**

एन आर जी, बी ए आर सी,

मुंबई-400 085

कुछ फूल : कुछ कांटे

वैज्ञानिक का नवीन अंक (अप्रैल-सितं. 2008) पढ़ा। यह पत्रिका हिंदी भाषा में विज्ञान संबंधित विषयों की वैज्ञानिकों द्वारा संपादित पत्रिका है, अतः अपेक्षा की जाती है कि इसमें छपी सामग्री विज्ञान सम्मत प्रामाणिक शब्दों के प्रयोग पर आधारित हो कि जिससे पाठकों के लिए प्रस्तुत किये गये विषय को समझने में आसानी रहे। विशेषकर ऐसे पाठक जो विद्यार्थी हैं, या नये हैं उनके लिए पत्रिका में छपी सामग्री प्रामाणिक है और वे आगे भी इसे संदर्भ की तरह उपयोग कर सकते हैं। अतः आवश्यकता है कि इसमें छपने से पहले संपादक मण्डल उपलब्ध सामग्री को ठीक से संशोधित करके ही छपने के लिए दें।

मुझे अलका प्रमोद द्वारा लिखे एक लेख "एक दृष्टि ब्रह्मांड के ओर" पृष्ठ 24 पढ़ने पर लगा, इसमें इस प्रकार का संपादन लगभग नहीं हुआ है। तथा यह लेख अनेक अशुद्धियों अथवा अप्रमाणिक वैज्ञानिक शब्दावली के शब्द प्रयोगों से भरा पड़ा है।

उदाहरणार्थ लेखिका ने गैलेक्सी (GALAXY) शब्द के लिए आकाश गंगा के स्थान पर मंदाकिनी शब्द का उपयोग किया है। स्थानीय आकाश गंगा का नाम अथवा मंदाकिनी संस्था होना चाहिये। अन्य उदाहरणों में पृष्ठ 24 के पैरा 2 के आखिरी वाले दो वाक्य देखें। लिखा है, "और, जो तारे आज हम देख रहे हैं.... हजारों अरबों वर्ष पूर्व जल चुका था... यानी वे हमसे अरबों मील दूर है। इनकी दूरी का .... उन्हें पृथ्वी तक आने में 10,000 लाख वर्ष लगे है।" इन दोनों ही वाक्यों में पढ़कर लगता है कि इनका संपादन होना चाहिये था। तथा लिखा जाना (छापा जाना) चाहिये था, कि "जो तारे.... वे हमसे हजारों अरबों प्रकाश वर्ष की दूरी पर हैं। प्रकाश की गति... जान पाये हैं, उनसे आने वाले प्रकाश को पृथ्वी तक .... हैं।"

इसी प्रकार अगले पैरा (पृष्ठ 24, पैरा 3) का पहला वाक्य कहता है कि ब्रह्माण्ड में कुल ...... तारे हैं। वास्तव में तारों की यह संख्या हमारी अपनी आकाश गंगा जैसी रचना की औसत संख्या है, पूरे ब्रह्माण्ड की नहीं। और सच्चाई यह भी है कि अब तक हमने ब्रह्माण्ड के किनारे देखे ही नहीं हैं, यह एक खुला हुआ विषय है।

आगे फिर लेखिका ने ग्रह-उपग्रह के शब्दों की संधि नक्षत्र शब्द का प्रयोग ग्रहों के लिए कर दिया है। इसके कारण पृष्ठ 27 का पहला पैरा पूर्णतः अर्थहीन है, अथवा उपलब्ध जानकारी को गलत विवरण के साथ प्रस्तुत करता है। इसी पृष्ठ का दूसरा पैरा भी ठीक नहीं है।

सत्य यह है कि नक्षत्र सूर्य जैसे ही स्वयं प्रकाशित पिण्ड है, जो चंद्रमा/सूर्य आदि सौर मण्डल के सदस्यों की स्थिति को दर्शाने के लिए आकाश में मानकों की तरह उपयोग किये जाते हैं। भारतीय खगोल शास्त्रियों ने इनके नाम भी रखे हैं। अश्विनी, भरणी.... इत्यादि। इनकी संख्या 27 (28 यदि अभिजीत भी शामिल किया जाय) है।

पृष्ठ 26 पर चौथे पैरा में लिखा है, "और वे निश्चित योजना में घूमते है जिसके कारण हमें वे सदा एक निश्चित आकार में ही दिखाई देते है।" सत्य यह है कि तारामण्डल घूमते तो हैं (सभी पिण्ड घुमन्तु अवस्था में ही हैं), किन्तु निश्चित आकार या दिशा में दिखाई देने का कारण उनकी हमारे से लम्बी सापेक्ष दूरियाँ है। न कि निश्चित प्रकार/आकार में घूमता!

इसी प्रकार की अनेक अशुद्धियां इस लेख में है। और लेखिका ने सारांश न लिखकर लेख को एकदम समाप्त कर दिया है।

यह लेख क्योंकि खगोलशास्त्र से संबंधित है और एक लोकप्रिय विषय होने के कारण सबके पढ़ने में रुचि उत्पन्न करने वाला है अतः इसमें दी गयी जानकारी में शुद्धता का होना अति आवश्यक मानदंड होना चाहिये था।

संपादक मण्डल से इस प्रकार की अपेक्षा रहेगी कि भविष्य में इस प्रकार के लोकप्रिय विषयों पर आधारित लेख इन विषयों की जानकारी रखने वाले संबंधित विज्ञानवेत्ताओं को दिखाकर या लेखक/लेखिका से प्रामाणिक करवा कर ही छापे जाये। जिससे कि बोध/अबोध वैज्ञानिक पाठक वर्ग को ठीक से जानकारी प्राप्त हो।

डॉ. जगदीश चंद्र व्यास वैज्ञानिक अधिकारी
तकनीकी भौतिकी एवं प्रारूप प्राद्योगिकी प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई-400 085.

संपादक मंडल इस बात से प्रसन्न है कि पाठक ने इस लेख को काफी गहराई से पढ़ा और अपनी स्पष्ट

प्रतिक्रिया व्यक्त की है। जहां तक शब्दों के चुनाव का प्रश्न है यह काफी हद तक लेखक की विषय के बारे में अपनी समझ पर निर्भर करता है। प्रामाणिक शब्द कोष में 'गैलेक्सी' के लिए मंदाकनी, आकाश गंगा, तारा समूह इत्यादि शब्द दिये गये हैं।

एक जागरूक एवं विषय संबंधित पाठक की नैतिक जिम्मेदारी है कि वह गलत तथ्यों की जानकारी संपादक मंडल को दे ताकि लेखक से स्पष्टीकरण लिया जा सके। वैसे भी लेख में व्यक्त विचारों से संपादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है हालांकि संपादन मंडल का प्रयास अवश्य रहता है कि गलत जानकारी प्रकाशित न होने पाय। संपादन संबंधी अशुद्धियों के लिए संपादन मंडल को खेद है।

लेखिका से आशा की जाती है कि वह यथाशीघ्र अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करे ताकि ''वैज्ञानिक'' के माध्यम से पाठकों तक पहुंचाया जा सके।

- संपादन मंडल

'वैज्ञानिक' के पूर्व-संपादक डॉ. राज नारायण पांडेय के असामयिक निधन का समाचार पढ़ मैं सकते में हूँ। बरसों जिनके संग 'वैज्ञानिक', 'संस्कृति' तथा 'आकाशवाणी' के लिए मिल कर काम किया, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में हिंदी के अनेक कार्यक्रमों का आयोजन किया; जिनके सानिध्य में बहुत कुछ सीखने का अवसर पाया; ऐसे मित्र और साथी को खो देना क्या कम दुःखद चीज़ है? डॉ. राज नारायण पांडेय उच्च कोटि के विज्ञानी तथा विज्ञान लेखक तो थे ही, वे हिंदी काव्य व गद्य का भी खूब आनंद लेते थे। कृषि-विशेषज्ञ डॉ. पांडेय के लेखन में वाकई फूलों की खुशबू आती थी। 'योगाभ्यास का असली विषय क्या है', ऐसे ऐसे अनूठे विषयों पर उन्होंने कलम चलाई तथा इस देश के हिंदी पाठकों का ज्ञान समृद्ध किया। करीब दो वर्ष पूर्व वे रिटायर हुए तो उस मौके पर मैंने उन्हें अनेक गुणों की खान कहा था। वे ऐसे मित्र थे जिनके सानिध्य में आप बिल्कुल सहज तथा सुखी महसूस करते थे। और हाँ, शायद वही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें सभी स्नेह देते थे, प्यार करते थे। ऐसा था उनका सहज और निश्छल स्वभाव। शायद डॉ. पांडेय जैसे व्यक्ति के लिए ही ये लाइनें लिखी गई हैं...

कुछ लोग मरते तो हैं, फना नहीं होते ।
वो सच में हमसे कभी जुदा नहीं होते ।।

आने वाले कई-कई वर्षों तक हम सब उन्हें 'मिस' करते रहेंगे। उनकी कमी की प्रखरता से महसूस करेंगे। पिछले कई वर्षों से डॉ. पांडेय किडनी की समस्या झेल रहे थे, संभवतः इसी कारण अचानक वे अस्वस्थ हो चल बसे होंगे। उनका मुस्काता, मैत्रीपूर्ण व्यक्तित्व हम सभी को बरसों तक प्रेरणा देता रहेगा।

'वैज्ञानिक' जैसी पत्रिका का इंतज़ार इस देश के कई-कई पाठक बेसब्री से करते रहते हैं, यह आपको विदित ही है। अतः सब सुख-सुविधा होते हुए भी, और विशाल प्रबंधन एवं संपादन मंडल के बावजूद 'वैज्ञानिक' के प्रकाशन में लगातार विलंब होना, संयुक्तांक प्रकाशन की मजबूरी होना.... यह सब हमारी समझ के परे है। इस पर तुर्रा यह कि पारिश्रमिक भी न्यूनतम! यह स्थिति अत्यंत अस्वास्थ्यकर है, बदलने योग्य है। करबध्द प्रार्थना है कि काम हाथ में लिया है तो उसका निर्वाह भी ठीक हो, अच्छा हो। यदि कुछ कटु कह दिया हो तो क्षमा चाहता हूँ।

डॉ. कोठियाल ने और 'वैज्ञानिक' ने इस जन्म शताब्दी वर्ष में डॉ. भाभा को प्रेम से याद किया, पढ़ कर अच्छा लगा! आगामी अंक को एक 'भाभा विशेषांक' के रूप में रखेंगे तो 'वैज्ञानिक' की सार्थकता और बढ़ेगी। और हाँ, डॉ. भाभा को 'भारत रत्न' का नागरिक सम्मान मिले, इस बात की पुरज़ोर पैरवी भी 'वैज्ञानिक' को करनी चाहिए।

डॉ. देवकी नंदन
2205, न्यू जय भारत सोसायटी,
प्लॉट 5, सेक्टर-4, द्वारका, नयी दिल्ली-110 075.

'वैज्ञानिक' का प्रतियोगिता विशेषांक मिला। अप्रैल-सितंबर 2008 के इस अंक को पढ़कर संतोष मिला। सभी लेख अच्छे स्तर के हैं।

एक लेख 'स्मृति के विधि आयाम' श्री आलोक कुमार मिश्र का है। मैं अपने विचार उनसे बांटना चाहता हूँ। मेरे विचार में स्मृति का मस्तिष्क में संचयन की प्रक्रिया कुछ मिलीजुली है। संभवतया स्मार्ट संरचनाओं (चंद चतुर संरचनाएँ) में भी कुछ इसी प्रकार का प्रयास होता है। सूचनात्मक विद्युत तरंगें, संरचना विहति (स्ट्रेन) से उत्पन्न होती है और इन विद्युतीय तरंगों से, स्मृति कोशिकाओं में, त्रिविमीय प्रत्यास्थता विकृति की उत्पत्ति होती है। यही प्रत्यास्थता विकृति जब वापिस होती है तो उसी प्रकार की सूचनात्मक विद्युत तरंगें प्राप्त होती हैं और इनसे वास्तविक सूचना पुनः प्राप्त की जा सकती है। स्थायी विकृति होने पर, सूचना भी संभवतया स्थायी हो जाती है और विद्युत संकेत, तरंग स्थायी रूप से उपलब्ध रहते हैं। इन मस्तिष्क स्मृति कोशिकाओं में यदि क्षति उत्पन्न हो जाती है या वे विकृत हो जाती हैं, तो सूचना या तो विकृत हो जाती है या खो जाती है। उसे वापिस प्राप्त करना प्रायः संभव नहीं हो पाता।

आपके विचार, इस विचार के बारे में प्रतीक्षित रहेंगे।

- राजकुमार जैन
210, अध्विका फैंटाशिया एपार्टमेंट,
6वां क्रॉस कग्गदासपुरा, पापम्मा ले-आऊट,
सी. वी. रामन नगर, बैंगलोर - 560 093.

'वैज्ञानिक' अप्रैल-सितंबर-08 का अंक प्राप्त हुआ। सबसे पहले मुझे डॉ. राजनारायण पाण्डेय, पूर्व संपादक-'वैज्ञानिक' के निधन पर काफी दुःख हुआ। वो एक उदार व्यक्तित्व वाले सभ्य व्यक्ति थे तथा हिंदी विज्ञान में उन्होंने अमूल्य योगदान दिया जिसके लिए 'वैज्ञानिक' परिवार कृतज्ञ है। उसके बाद मैंने श्री विजन कुमार पाण्डेय का खेद पत्र पढ़ा। मुझे भी निराशा हुई लेकिन मैं अनुचित चीज़ों के खिलाफ रहता हूँ तथा 'वैज्ञानिक' पत्रिका से जुड़े रहने एवं किसी सज्जन के कहने पर ही यह सूचना दी। फिर मैंने सोचा, कहीं लेखक को दुःख तो नहीं हुआ, मेरे कारण किसी को चोट न पहुँचे।

विजन कु. पाण्डेय निःसंदेह विज्ञान विषयों के विशिष्ट लेखक हैं। विज्ञान प्रगति, आविष्कार आदि पत्रिकाओं में उनके मैंने भौतिकी से संबंधित अच्छे लेख पढ़े हैं लेकिन परेशानी यह है कि जब वो अपने क्षेत्र (भौतकी) से अलग हटते हैं तो शायद उसे रोचक बनाने में इस प्रकार की गलती हो जाती है अतः मेरा विज्ञान लेखकों से यही अनुरोध है कि वे अपने क्षेत्र से संबंधित ही लेख लिखें जिससे लेख रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक सिद्ध होगा। मेरे कारण यदि डॉ. विजन कु. पाण्डेय को तकलीफ पहुँची है तो इसका मुझे खेद है।

- संजय गोस्वामी
एन.आर.जी., भा.प.अ. केंद्र,
मुंबई-400 085.

मैं 'वैज्ञानिक' पत्रिका नियमित प्राप्त करता रहा हूँ। इसकी रचनाएँ परिषद के निर्धारित लक्ष्यों की ओर निरंतर अग्रसर रहती हैं। भारत विकसित राष्ट्र की श्रेणी में आने को आतुर है। ऐसे में भारतीय ज्ञान को अन्य राष्ट्र पेटेन्ट करा ले जा रहे हैं। जो एक चिंता का विषय है। एक आम भारतीय अपने ज्ञान का (विविध विधा) प्रौद्योगिकी का पेटेन्ट कराकर राष्ट्रीय सम्पत्ति बना सकता है। परन्तु पूर्ण व सहज-सरल रूप से जानकारी व तौर-तरीका, नियम, कायदे-कानून, होने वाले खर्च के साथ कहाँ, क्या और किस तरह से कदम उठाया जाय की जानकारी का अभाव' है।

कृपया इससे संबंधित विस्तृत जानकारी प्रदान करता एक अंक प्रकाशित कर कृतार्थ करें।

- राजेन्द्र प्रसाद मधुबनी
व्याख्याता, मनोविज्ञान फ्रेण्डस कॉलोनी,
मधुबनी, बिहार - 847 211.

विशेष : छपते-छपते

आतंक का पर्याय बनता : स्वाइन फ्लू (इंफ्लूएंजा-ए-एच1एन1)

डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार, एम.डी.
गायत्री नगर, पो. दमोह (म. प्र.), पिन - 470 661

स्वाइन फ्लू नया रोग नहीं है। पाँच दशक पूर्व अमरीका के न्यूजर्सी में यह रोग फैला था। वर्तमान में पचास वर्ष बाद जब अप्रैल 2009 में मैक्सिको में इस रोग के रोगी पाए गए तो लगा यह रोग नया है, जबकि 1950 के दशक में भी 2000 अमरीकी सैनिक रोग की गिरफ्त में आए थे। अभी मई 2009 के पहले पखवाड़े तक स्वाइन फ्लू, चार महाद्वीपों के चालीस देशों में फैल चुका है और साढ़े दस हजार से ऊपर लोग इसकी गिरफ्त में आ चुके हैं और सैकड़ों रोगियों की मृत्यु भी इस गंभीर संक्रामक रोग से हो चुकी है। अकेले मैक्सिको में 101 रोगियों की मौत इस संक्रामक रोग से हुई। अमरीका में लगभग 5000 से ऊपर स्वाइन फ्लू के मामलों की पुष्टि हो चुकी है और कई की मौत हो चुकी है। जबकि ब्रिटेन में सौ से ऊपर मामले पाए गए। माह जून तक विश्व में 25 हजार रोगियों की पुष्टि हो चुकी है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार इस रोग पर शीघ्र नियंत्रण पाना अत्यंत जरूरी है वरना यह तीव्र संक्रामक रोग पूरी दुनिया के लिए एक बड़ा खतरा बन जायेगा। प्रायः प्रत्येक देश इस रोग के प्रति सतर्क हो चुका है।

रोग का इतिहास : जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि फ्लू एक पुराना रोग है। इस रोग के 1958 में यूरोप में फैलने के अलावा इस रोग ने 1918 और 1968 में भी दुनिया में दहशत फैलाई थी। एक जानकारी के अनुसार रोग के वाइरस या विषाणु 1933 और 1946 में भी पाए गए थे। यह देखा गया कि यह एक विश्वव्यापी रोग है, जो 10 से 15 वर्षों के अंतराल से कई देशों में एक साथ फैल जाता है तथा इस रोग के प्रकारों को विभिन्न देशों के नाम से भी जाना जाता है। उदाहरणार्थ 1957 में एशिया में फैले फ्लू को एशियन फ्लू नाम दिया गया और 1968 में ''हांगकांग इंफ्लूएंजा'' नाम दिया गया।

स्वाइन फ्लू क्या है : विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार यह रोग इंफ्लूएंजा -ए (H1, N1) नाम से जाना जाता है। वास्तव में अभी यह तय भी नहीं हो सका है कि इस तरह का फ्लू सुअरों में पाया जाता है या उसके विषाणु केवल पिग या सुअरों में पाए गए हैं। अतः विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सुअरों को मारने से मना किया है। यह द्रष्टव्य है कि इस रोग के विषाणु सुअरों के अलावा पक्षियों, घोड़ों, कुत्तों, घरेलू मुर्गे - मुर्गियों में भी पाए जाते हैं। इस तरह यह कहना कि रोग केवल सुअरों द्वारा ही फैलता है, पूर्णतः सही नहीं है। हाँ अलग-अलग जन्तुओं में इस रोग के पाए जाने वाले विषाणुओं की संरचना (Strains) में थोड़ा अंतर पाया गया है। जैसे पक्षियों में एस-5 एन-1 एन्टीजन युक्त स्ट्रेन्स खोजा गया है।

''यह एक श्वसन संस्थान का तीव्र संक्रमण है जो इंफ्लूएंजा-ए विषाणुओं द्वारा होता है और इस रोग में एकदम से तेज़ बुखार, खांसी, पेशियों में दर्द और कमज़ोरी महसूस होती है। गले में खराश और सांस लेने में तकलीफ या न्यूमोनिया जैसे लक्षण भी मिल सकते हैं।

रोग का कारक : इस रोग का विषाणु आर्थो मिक्सो वाइरेडी परिवार का है। इसके तीन उप प्रकार होते हैं; टाइप -ए, टाईप -बी और टाइप -सी। इन तीनों विषाणुओं के विषाणु विष (Antigen) अलग-अलग तरह के होते हैं। जैसे कि स्वाइन फ्लू में एच -1, एन -1 (H1, N1) सरफेस एन्टीजन पाया गया है। इंफ्लूएंजा 'ए' वाइस अन्य विषाणुओं से अलग तरह का होता है। इसकी खोज 1933 में की गई थी बाद में 1957 और 1968 में इसके एन्टीजन अथवा प्रतिजन में कुछ परिवर्तन पाए गए। स्वाइन फ्लू का कारण वायरस 'ए' को ही माना गया है। इसमें एच-1, एन-1 सरफेस एन्टीजन होता है। जबकि वायरस 'बी' दुर्लभ रूप में ही मिलता है तथा वाइरस 'सी' सुअरों में नहीं पाया जाता है।

संक्रमण का स्त्रोत : यह रोगी के अलावा कुछ स्वथ्य दिखने वाले मनुष्य में भी हो सकते हैं। संक्रमित व्यक्ति की नाक के स्त्राव एवं खंखार में रोग के विषाणु होते हैं, जो खांसी के साथ या रुमाल और तौलिए जैसे कपड़ों के द्वारा अन्य स्वस्थ व्यक्ति में प्रवेश कर सकते हैं। रोग के वाइरस या विषाणु रोग के लक्षण मिलने से एक दो दिन पूर्व और 1 से 2 दिन बाद तक रोगी में मिलते हैं। अतः इस समयावधि के अंदर रोगी अन्य स्वस्थ व्यक्तियों को भी संक्रमण का शिकार बना सकता हैं।

यह फ्लू प्रत्येक उम्र के व्यक्तियों को अपना शिकार बनाता है। परन्तु 18 महीने से कम के बच्चों और 65 वर्ष से ऊपर के वृद्धों एवं मधुमेह और गुर्दो के रोगियों और हृदय रोगियों में इस रोग के कारण अधिक जान गई हैं। ऐसे लोगों को अधिक खतरे वाले समूह में रखा गया है क्योंकि इनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होती है।

सघन आबादी वाले शहरों, मेलों, उत्सव स्थलों में रोग के फैलने और बढ़ने की संभावना अधिक होती है। इसी तरह स्कूलों, जहाजों जैसे स्थानों में भी संक्रमण की गुंजाइश अधिक होती है। यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में खांसी अथवा श्वसन संस्थान के स्त्रावों द्वारा फैलता है। इस रोग का संक्रमण होने के तुरंत बाद रोग के लक्षण उत्पन्न नहीं होते बल्कि यह लक्षण 18 से 72 घंटे पश्चात उत्पन्न होते हैं।

रोग का विषाणु (टाइप -ए) श्वसन संस्थान में पहुंचकर श्वास नलिकाओं में सूजन उत्पन्न करते हैं साथ ही इनकी कोशिकाओं के अस्तर को भी नष्ट कर देते हैं। इस कारण श्वसन नलिकाओं में जीवाणुओं का भी संक्रमण हो जाता है फिर रोगी को बुखार, शरीर में दर्द, खांसी, कमज़ोरी, सांस लेने में कठिनाई इत्यादि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

रोग की पहचान : रोग की पहचान केवल लक्षणों के आधार पर नहीं होती। प्रयोगशाला में विषाणु का परीक्षण कर रोग का निश्चयन किया जाता है लेकिन इस विषाणु की प्रयोगशाला में जाँच अत्यंत कठिन होती है। जाँच की सुविधा भारत में इंफ्लूएंजा सेंटर पाश्चर इंस्टीट्यूट कुनूर (दक्षिण भारत), हॉफ्फकिन इंस्टीट्यूट मुंबई, स्कूल ऑफ ट्रॉपिकल मेडिसिन कोलकाता तथा ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज नयी दिल्ली और आर्म्ड फोर्स मेडिकल कॉलेज पुणे में उपलब्ध है। जाँच के लिए रोगी के रक्त के 2 नमूने भेजे जाते हैं।

रोग का इलाज : इस रोग के रोगी को न केवल अस्पताल में भर्ती करना ठीक रहता है बल्कि एक अलग कमरे में रोगी को रखना चाहिए जिससे वह अन्य व्यक्तियों को रोग न बांट सके। चूंकि इस रोग के टीके के असर की कुछ सीमाएं होती हैं। अतः विषाणु प्रतिरोधी दवाएं (Antiviral Drugs) रोगी को दी जाती हैं। यही दवाएं रोग से बचने के लिए भी स्वस्थ व्यक्ति को खाने की सलाह दी जाती है। राइमेन्टीडाइन या टेमी फ्लू नामक विषाणुरोधी दवाएं रोग में असरकारक साबित हुई हैं। इससे रोगी की जान बच जाती है और तकलीफों में शीघ्र आराम मिलता है। ऑक्सीजन एवं अन्य दवाएं भी चिकित्सक के परामर्श अनुसार दी जाती हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इलाज का पूरा असर तभी होता है जब इलाज रोग की पहचान कर 48 घंटे के भीतर शुरू कर दिया जाए। यहाँ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि रोगी की देखभाल करने वाले स्वास्थ्य कर्मियों और मिलने-जुलने वाले लोग मास्क पहनकर रोगी के कमरे में प्रवेश करना चाहिए।

इंफ्लूएंजा ''ए'' (स्वाइन फ्लू) से बचाव : जब विश्व में यह रोग सामूहिक रूप से (Epidamic) फैलता है तो रोग पर पूर्णतः नियंत्रण कर पाना मुश्किल होता है क्योंकि आज पूरे विश्व के देशों के लोग परस्पर एक दूसरे के देशों की यात्रा करते हैं और ये लोग इस तरह के रोग को अन्य देशों में फैलाने में सहायक बनते हैं। इंफ्लूएंजा -ए (फ्लू) से बचाव के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए -

1) ऐसे शासकीय और निजी भवन हों जहाँ कर्मचारियों को खुली हवा मिले एवं एक ही भवन में लोगों की अति सघनता न हो।

2) जब यह रोग फैल रहा हो तब लोग भीड़ भरे स्थानों से स्वयं भी बचे और अपने बच्चों को भी बचायें।

3) यात्राओं एवं भीड़ में मास्क का प्रयोग करें या नाक और मुंह पर रुमाल रखें।

4) खांसते या छींकते समय भी चेहरे को रुमाल या तौलिए से ढ़कें।

5) ऊपर बताये गये फ्लू के लक्षण मिलने पर तुरंत चिकित्सक को दिखलाकर इलाज शुरू करें।

6) जब रोग फैल रहा हो तो घरेलू पालतू जानवरों और पक्षियों से सीधे संपर्क से बचें। सुअरों से भी दूर रहें तथा इनके अधपके मांस का सेवन न करें।

बचाव व टीका : इंफ्लूएंजा 'ए' या फ्लू से बचाव का सबसे कारगर हथियार है इसका टीका। टीके शरीर में रोग प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न करते हैं जब रोग के विषाणुओं का शरीर पर संक्रमण होता है तो शरीर पूर्व से टीकों द्वारा उत्पन्न प्रतिरोधक क्षमता के बलबूते पर रोग के विषाणुओं को परास्त या नष्ट कर देता है।

लेकिन अभी फ्लू के सभी एंटीजन के प्रकारों से रक्षा के लिए पूर्ण और प्रभावी वैक्सीन या टीके नहीं बनाये जा सके हैं। इसलिए एक ऐसे नये टीके की खोज में वैज्ञानिक जुटे हैं जो विषाणुओं में मौजूद एच और एन प्रतिजन से शरीर को सुरक्षा प्रदान कर सकें। अभी जो वैक्सीन उपलब्ध हैं उसे रोग फैलने के 2 सप्ताह पूर्व लगवाना पड़ता है तब यह रोग से सुरक्षा दे पाता है। अब प्रश्न उठता है कि 2 सप्ताह पूर्व कैसे पता चलेगा कि अमुक जगह पर रोग फैलने वाला है। अतः टीके रोग के फैलाव को रोकने में असमर्थ होते हैं। बस एक संभावना को ध्यान में रखकर कारखानों, मिलों इत्यादि के कर्मचारियों को ऐसे टीके लगाये जा सकते हैं। पुलिसकर्मियों, अस्पताल के कर्मचारियों को भी ऐसे टीके एक साथ लगवाने की सलाह दी जाती है।

अभी कुछ नये तरह के टीके भी आये हैं जिन्हें स्प्लिट लाइरस वैक्सीन कहते हैं। ये टीके पूरे विषाणु से तैयार न करके उसके कुछ हिस्से से तैयार किये जाते हैं। अतएव ये टीके अधिक सुरक्षित और प्रभावी होते हैं। ऐसे टीके बच्चों को भी सुरक्षा के लिए आसानी से लगाये जा सकते हैं।

फ्लू के बारे में उक्त विवरण से ज्ञात होता है कि यह रोग खतरनाक एवं जानलेवा तो है लेकिन रोग से आवश्यक सावधानियां रखकर बचा जा सकता है। अतः इस तरह के संक्रामक रोगों से अनावश्यक रूप से डरने की जरूरत नहीं है। हाँ सावधान रहने की आवश्यकता जरूर है।

विज्ञान कविता

बादल का बाँझपन

उमड़-उमड़ कर आए बादल,
गरज-तरज कर चले गए बादल।
एक बूँद तक न बरसे बादल,
उड़ते लहराते ललचाते बादल।।

मानसूनी बादलों से परेशान,
आकाश ताकता रहा किसान।
जमीन तपती रही प्रति दिन,
पारा चढ़ाता रहा दिनमान।।

जगत के प्राणी बेचैन हुए,
नदियाँ सूख कर काँटा हुईं।
फूल-पत्ते झुलसे, खाक हुए,
जीवन रेखा कृशकाय हुई।।

ऐसा क्यों है बादल का मिजाज,
क्यों करता है ऐसा व्यवहार।
क्या रहस्य छिपा है इन सबमें,
ऐसा क्या इसके रसायन में?

चलो चलते हैं जहाज में बैठ के,
ढूँढ़ेंगे बादल के पास पहुँच के।
क्यों यह बरसता या उड़ जाता?
जानेंगे सब रहस्य नमूने ला के।।

यदि बादल होगा सूखा खाली,
सौ-डेढ़ सौ देंगे हम सुई लगा।
सिल्वर आयोडाइड की दवा पा,
बादल का बाँझपन दूर होगा।।

फिर बरसेगा बादल झूम के,
रिमझिम की तान बिखेर के।
किसान जोतेगा धरती हँस के,
तरेगा हर कण-कण भीग के।।

- डॉ. रश्मि वार्ष्णेय
सी-36, हेवी वॉटर प्लांट कॉलोनी,
निजामपुरा, छाणी जकात नाका,
वडोदरा - 390 002.

रचनाकारों से विशेष निवेदन

कृपया प्रकाशनार्थ पांडुलिपि तैयार करते समय संपादन की सुविधा के लिए निम्नलिखित निर्देशों का पालन करें :

1) (क) विभक्तियों को शब्दों से अलग लिखा जाये - उदाहरण - 'राम ने', 'मेज पर', लड़कों को'
(ख) सर्वनामों की सभी विभक्तियों को मिला कर लिखा जायें -
उदाहरण - 'उसने', 'मैंने', 'उनका', 'हमसे'
(ग) जिन सर्वनामों के अंत में 'ही' अथवा 'ई' लगा हो, उनकी विभक्तियों को अलग लिखा जाये -

2) पूर्वकालिक क्रियाओं के 'कर' को अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'जा कर', 'आ कर', अन्यथा 'कर' मिलाकर लिखें।

3) संयुक्त क्रियाओं में दोनों अंशों को अलग-अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'आ गया', 'चल पड़ा', 'हो सका'

4) जिन भूतकालिक कृदंत क्रियाओं अथवा विशेषणों का अंत 'या' से होता है, उनके स्त्रीलिंग और बहुवचन रूपों में 'य' का ही प्रयोग किया जाये - उदाहरण - 'गया, गयी, गये', 'नया, नयी, नये', 'आया, आयी, आये', 'लाया, लायी, लाये', 'पाया, पायी, पाये', 'खाया, खायी, खाये', 'किया, किये आदि।

5) 'हुआ' जैसी जिन क्रियाओं के अंत में 'आ' है उनके स्त्रीलिंग 'हुई' व बहुवचन 'हुए' के अनुसार होना चाहिए।

6) 'लिये/लिए' : 'लिये' को 'लिया' का बहुवचन रूप मानें और 'लिए' को विभक्ति चिन्ह।
'चाहिये / चाहिए' : 'चाहिए' ही लिखा जाये।

7) 'एसा / ऐसा' : 'ऐसा' लिखा जाये।
'दिखाई / दिखायी' : 'दिखाई' संज्ञा रूप मानें और 'दिखायी' भूतकालिक क्रिया (स्त्रीलिंग)। उदाहरण - 'सांप दिखाई पड़ा', 'मैंने उसे पुस्तक दिखायी' इसी प्रकार 'पढ़ाई' और 'पढ़ायी' में भी अंतर करें।

8) आदरार्थ आज्ञा रूपों में संभावनार्थक क्रियाओं में 'ए' ही लिखा जाये -
उदाहरण - 'आइए', 'खाइए', 'जाइए', 'समझिए', 'कीजिए' 'रखिए' आदि।

9) अनुस्वार और आनुनासिक ध्वनियां : 'संयुक्त व्यंजन' की अनुनासिक ध्वनि को 'अनुस्वार' के द्वारा दर्शाया जाना चाहिए -
वर्ग का प्रत्येक पंचम वर्ण यथा, ङ. ('क' वर्ग), ञ 'च' वर्ग), ण ('ट' वर्ग), म ('प' वर्ग) तथा न ('त' वर्ग) अनुनासिक ध्वनियां है।
अनुस्वार स्थापन का नियम इस प्रकार है : जिस किसी अक्षर के आगे यदि उसी वर्ग की अनुनासिक ध्वनि है तो उसे अनुस्वार (बिंदी) से बदला जा सकता है;
उदाहरण - कंगन, अंक, व्यंजन, रंजन, ठंडा, डंडा, पंडित, कंपन, पंप, बंद, परंतु, किंतु, मृगांक, दंडित, संबंध, अंत आदि।
इस नियम का प्रयोग ध्यानपूर्वक करना चाहिए, अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है। जन्म, मान्य, समन्वय, सम्मति आदि शब्द वैसे ही रहेंगे।

10) एकवचन से बहुवचन - 'या' से 'ये', 'ए' नहीं। जैसे, रुपया - रुपये, हंसिया - हंसिये (हंसिए' आदारार्थ आज्ञा रूप होगा)

11) संस्कृत के जो शब्द हिंदी में तत्सम रूप में प्रचलित हैं, उनमें 'य' का व्यवहार उचित है। जैसे, अस्थायी, बाजपेयी, उत्तरदायी आदि। इन्हें अस्थाई, बाजपेई, उत्तरदाई लिखना न तो व्याकरण सम्मत है और न व्यावहारिक।

12) चंद्र-बिंदु का प्रयोग - छपाई की सुविधा के लिए चंद्र-बिंदु की जगह अनुस्वार का प्रयोग किया जाये। जैसे अंधा, आंख, अंगना, चांद, मां, पहुंचना, हां, आदि।

13) संख्याओं को अरैबिक (अंग्रेजी) में लिखा जाये - 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10.

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भा.प.अ.केंद्र, ट्रांबे, मुंबई-85 के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित एवं श्री कुलवंत सिंह द्वारा रॉयल एन्टरप्राइजेस, चेंबूर, मुंबई-71. (फोन : 25234229) में मुद्रित व प्रकाशित।

R. No. : 18862/70

वैज्ञानिक (त्रैमासिक)

दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों व कॉलेजों के लिए स्वीकृत।

'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद' की वैज्ञानिक मोनोग्राफ प्रकाशन योजना

परिषद ने विज्ञान के विभिन्न विषयों पर मोनोग्राफ (पृष्ठ संख्या लगभग 64, 96, 128, 192, 256) प्रकाशित करने की एक योजना बनायी है। इस कार्य के लिए उचित मानदेय, (120 रु. प्रतिपृष्ठ लेखन एवं टंकण, चित्रों इत्यादि के लिए अलग) देने का प्रावधान है। परंतु प्रकाशित सभी पुस्तकों पर परिषद के सर्वाधिकार सुरक्षित रहेंगे। विषय-विशेषज्ञों से लगभग 5-6 पृष्ठों में पुस्तकों की विस्तृत रूप रेखाएं आमंत्रित हैं। जिसमें अध्याय, अनुच्छेद, संदर्भ सूची इत्यादि की जानकारी हो।

मोनोग्राफ मुख्य वैज्ञानिक विषयों यथा नाभिकीय, ताप रसायन, जीव विज्ञान आदि पर न होकर उप-विषय, जैसे आइसोटोप, लेसर, रेडियोधर्मिता, अतिचालकता आदि पर हों। उदाहरणार्थ कुछ उप-विषयों के सुझाव इस प्रकार हैं :

- नाभिकीय ऊर्जा के शांतिमय उपयोग
- नाभिकीय रिएक्टर
- नाभिकीय ईंधन - यूरेनियम, प्लूटोनियम
- नाभिकीय पदार्थ - कवच, मंदक, परिरक्षक एवं अन्य
- आइसोटोप उत्पादन व उपयोग
- रेडियोसक्रिय विकिरण व उनके उपयोग
- नाभिकीय ऊर्जा एवं सुरक्षा
- एजिंग (काल प्रवाहन) एवं डिकमीशनिंग
- ईंधन पुनर्संसाधन
- अन्य संबद्ध कार्य

रूप रेखाओं का मूल्यांकन परिषद द्वारा गठित एक विशेष समिति करेगी। मूल्यांकन रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद लेखक को परिषद के साथ लेखन कार्य संबंधी अनुबंध पर हस्ताक्षर करने होंगे। इस संबंध में अधिक जानकारी के लिए परिषद सचिव से इस पते पर संपर्क करें : **श्री जयप्रकाश त्रिपाठी**, प्रभारी अधिकारी, न्यूक्लीयर मैटेरियल मैनेजमेंट अनुभाग, पी. पी., एफ. आर. डी. (F.D.R.), भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई- 400 085.

E-mail : jptripathi@rediffmail.com
Tel. : 022-2559 1224